

# पैरोकार

साहित्य, शिक्षा, कला व संस्कृति की त्रैमासिकी

वर्ष : 11 • अंक : 3-4 ( संयुक्तांक ) • जुलाई-दिसम्बर, 2022 • RNI-WBHN/2012/44200



**वर्ष 11 • अंक 3-4 • जुलाई-दिसम्बर (संयुक्तांक) 2022**  
**अंतरराष्ट्रीय पीयर रिव्यूड पत्रिका**

प्रधान संपादक : अनवर हुसैन
संपादकीय सलाहकार : डॉ. सुनील कुमार 'सुमन'
प्रबंध संपादक : मनोज कुमार
कार्यकारी संपादक : डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम
सहायक संपादक : डॉ. ललित कुमार
अंतरराष्ट्रीय सदस्य :
डॉ. मोरवे रोशन के : यूनिवर्सिटी ऑफ लॉड्ज, पोलैंड और बांग्लादेश
पीयर रिव्यूड टीम :
प्रो. एमजे वारसी : अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़,
डॉ. श्रीधरम : आरएसडी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
डॉ. संजय जायसवाल : विद्यासागर विश्वविद्यालय, मेदिनीपुर, प. बंगाल, डॉ. उमा यादव : महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, डॉ. अनीश कुमार : द पर्सपेरिटिव इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड ह्युमैनिटीज
संपादक मंडल : डॉ. तबस्सुम जहाँ, डॉ. श्रीनिवास सिंह यादव, सेराज खान बातिश, डॉ. चक्रधर प्रधान, मकेश्वर राजक, अजय चौधरी, नारायण दास, ब्रजेश प्रसाद
टाईप सेटिंग : रामजी पंडित

### संपादकीय कार्यालय

स्वास्थ्यक अपार्टमेंट  
हाईटेक कम्प्यूनिकेशन्स एण्ड कन्सलटेन्ट्स  
पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109  
मोबाइल : 9831674489  
E-mail ID - pairokarpublication@gmail.com  
m9903849713@gmail.com

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक व मुद्रक रोजायदा खातून द्वारा स्वास्थ्यक अपार्टमेंट, पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109 से प्रकाशित व हाईटेक कम्प्यूनिकेशन्स एण्ड कन्सलटेन्ट्स, पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109 से मुद्रित,

### संपादक : रोजायदा खातून

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों का है, उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी तरह का विवाद कोलकाता न्याय क्षेत्र के अधीन ही होगा।

### संपादन और प्रबंधन के सभी पद अवैतनिक

मूल्य एक प्रति- रु. 25/- वार्षिक सहयोग राशि- रु. 400/-

संस्थाओं के लिए : रु. 500/-, इस अंक का मूल्य रु. 50/-

### विषय-सूची

दलित आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि विश्लेषणात्मक.....	2
— आनंद दास	
दलित विर्माश : कुछ बिन्दु	9
— डॉ. अर्जुन कुमार	
हिन्दी के आरंभिक उपन्यास एक सर्वेक्षण	14
— नगीना लाल दास	
राजेश जोशी की कविता में स्त्री-स्वर	20
— मकेश्वर रजक	
खबरों के इलाके में कविता : रघुवीर सहाय	25
— डॉ. अनिल पुष्कर	
वक्तव्य एक संवाद और धूमिल.....	28
— डॉ. रमेश यादव	
परिवार एवं समाज से संघर्षरत 'अभागी-स्त्री'	31
— डॉ. राजू कुमार	
चन्द्रगुप्त नाटक में जयशंकर प्रसाद की नारी दृष्टि....	34
— नीतू कुमारी	
ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व	37
— नारायण दास	
भूमंडलीकरण, कोरोना और साहित्य	40
— परमजीत कुमार पंडित	
कविता :	
हिंदी का हिंदी दिवस — डॉ. तबस्सुम जहाँ	44
सिसकती हुई आँखें — नीता सिंह	
आशीष कुमार	
गांधी की याद — नारायण दास	46
वह स्त्री हूँ मैं, मजदूर — स्वेता यादव	
साक्षात्कार :	
नई प्रतिभाओं का मंच प्रदान करता है वॉलीबुड .....	47

## दलित आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि का विश्लेषणात्मक अध्ययन

आधुनिक युग में दलित साहित्य का दर्शन और विचारधारा सामाजिक संघर्ष और आंदोलन का प्रतिफलन है। फूले, छत्रपति साहू महाराज, पेरियार, नारायण गुरु और अंबेडकर में समानता यह थी कि उनकी प्रतिबद्धता देश की दलित—जिंदी जनता और स्त्रियों के प्रति थी। उनकी समस्याओं के लिए वे जीवन भर लड़ते रहे। वे भारतीय धर्म और दर्शन, राजनीति और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित करते हैं। 19वीं शताब्दी में हम सबसे पहले महाराष्ट्र में इस दलित साहित्य धारा का प्रभाव देखते हैं। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले के नाटकों और पंवाड़ा काव्य में इस विचारधारा के दर्शन होते हैं। महात्मा फूले की प्रख्यात रचना ‘गुलामगीरी’ है जिसमें उन्होंने ब्राह्मणवाद के आवरण को अंग्रेजी राज में गुलामगीरी नाम दिया था। इसमें ब्राह्मणवाद पर जितना तीखा प्रहार मिलता है उतना और ग्रंथ में नहीं मिलता। यह रचना संवाद शैली में लिखी गई है। वे लिखते हैं— “मनु जलकर खाक हो गया, जब अंग्रेज आया। ज्ञानरूपी मां ने, हमको दूध पिलाया।।। अब तो तुम भी पीछे न रहो। भाइयों, पूरी तरह जलाकर, खाक कर दो मनुवाद को।।।”<sup>1</sup> गुलामगीरी पुस्तक की रचना की जिसकी शैली यद्यपि प्रश्नोत्तरी है तथापि आक्रामकता का समावेश है। इनकी कविताओं में दलित विमर्श, अछूत और शुद्रों के लिए नवजागरण का विमर्श है। दलित साहित्य का दर्शन इनकी रचनाशीलता और संघर्ष से प्रभावित है। डॉ. रामचन्द्र का कहना है कि “फुले, पेरियार, नारायण गुरु, अंबेडकर ने आत्म—सम्मान और सामाजिक अस्मिता की जो भावभूमि तैयार की थी तथा संघर्ष का जो दीप प्रज्ज्वलित किया था, वह अब और भी तेजी से प्रदीप्त हो उठा है। वेदना,

आनंद दास

सहायक प्राध्यापक

श्रीकृष्ण बी.टी. कॉलेज, दाजर्लिंग

आक्रोश और आमूल परिवर्तन की आकांक्षा से दलितों ने अस्मिता के संघर्ष को एक आकार देना शुरू कर दिया है।<sup>2</sup> सदियों से जिसे साहित्य और समाज के हाशिए पर फेंक दिया गया था तथा जिसे अछूत, अतिशूद्र, अंत्यज, चांडाल, अवर्ण, पंचम आदि नामों से विहित करके घृणा, हिकारत और दया का पात्र बना दिया गया था, वही आज प्रखर आत्म—बोध के साथ इन सारी शब्दावलियों और विशेषणों को ढुकराकर स्वयं दलित के रूप में अपनी अस्मिता का बोध साहित्य, समाज और राजनीति तीनों ही स्तरों पर कर रहा है, जबर्दस्त दस्तक दे रहा है और यही नहीं अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करा रहा है तथा अपने अधिकारों के लिए स्वयं संघर्ष कर रहा है। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले के साथ समाज सुधारकों की एक व्यापक परम्परा ही चल पड़ी थी। फूले अंग्रेजी के विद्वान थे, धर्मज्ञाता थे, शैली में आक्रामकता थी। उनके पास अपनी बात को कहने का साहस था। वह दलित समस्याओं के एहसास को अभिव्यक्ति दे रहे थे। वह शिवाजी महाराज के कार्य से प्रभावित थे। उनकी प्रशंसा करते थे। धर्म के नाम पर कदाचार का खंडन करते थे। बाद में उन्होंने ‘सत्य शोधक समाज’ की स्थापना की। विधवा विवाह, केश प्रक्षालन, कुमारी माता आदि कुरीतियों पर उन्होंने आधुनिकता को अपनाया। इनको अवलम्ब आगरकार व रानाडे से भी प्राप्त हुआ था। काम्बले, किसन भागू जी बनसोडे आदि इसी परम्परा के चिन्तक व मनीशी थे। आधुनिक युग के शिक्षा के जनक ज्योतिबा एवं सावित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे, जयोति थास, मंगू राम,

स्वामी अछूतानन्द, अय्यनकली से लेकर डॉ. अम्बेडकर तक सामाजिक क्रांतिकारियों की समृद्ध परम्परा के बावजूद जिसने मनुवाद के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूंका और एक नए किस्म के आंदोलन की जमीन तोड़ी है। ज्योतिबा फूले की तरह पेरियार का सबसे बड़ा योगदान था वर्णश्रम—व्यवस्था और हिन्दू जाति—व्यवस्था जो व्यक्ति को उसके गुणों के आधार पर नहीं वरन् उसके जन्म के आधार पर ऊंचा या नीचा दर्जा देते हैं, उनको बेनकाब करना। पेरियार ने आत्म सम्मान आंदोलन की शुरुआत की थी। आत्म सम्मान आंदोलन का प्रारंभ जाति व्यवस्था की समाप्ति, नई वैवाहिक और सामाजिक व्यवस्था की रचना पर आधारित थी। धार्मिक प्रतीकों, विश्वासों व उपासनाओं का 'पेरियार' ने खुलकर विरोध किया और अपने समर्थकों को कहा कि 'विवेकवाद' से बड़ा धर्म विश्व में अन्य कोई धर्म नहीं है। पेरियार ऐसा करने वाले पहले व्यक्ति नहीं थे परन्तु वे हिन्दू धर्म द्वारा समाज को मनमाने ढंग से उच्च व निम्न वर्गों में विभाजित करने के कटु आलोचक थे। बाल विवाह, देवदासी प्रथा, विधवा पुनर्विवाह के विरुद्ध अवधारणा, स्त्रियों तथा दलितों के शोषण के पूर्ण विरोधी थे। उन्होंने हिन्दू वर्ण व्यवस्था का भी बहिष्कार किया। हिन्दू महाकाव्यों तथा पुराणों में कही बातों की परस्पर विरोधी तथा बेतुकी बातों का माखौल भी वे उड़ाते रहते थे। राम हिन्दुओं के लिये आदर्श महापुरुष ही नहीं परम पूजनीय देवता भी हैं। उनके जीवन को लेकर जितनी बड़ी संख्या में हिन्दी संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में रामकाव्य लिखा गया है वह उनको अतिमानवीय तो प्रदर्शित करता ही है, दुनिया भर के सारे अनुकरणीय गुणों से सम्पन्न भी दिखाता है। राम के चरित्रगत दोशों को उजागर कर वे इन उपेक्षित, उत्पीड़ित लोगों के अपने प्रति हुए अन्यायों, अत्याचारों को सामने

रखती हैं। ऐसी ही एक किताब का नाम है 'सच्ची रामायाण' जिसे 14 सितम्बर 1999 को महज इस वजह से इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अस्थायी तौर पर प्रतिबंधित कर दिया था क्योंकि वह अधिकतर अन्य रामायणों की तरह राम के विश्ववन्द्य स्वरूप को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं करती। सुरेश पंडित लिखते हैं— "उन्हें लगता है कि राम को पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित करने की हठीली मनोवृत्ति ने जान बूझकर उनके आसपास विचरने वाले चरित्रों को बौना बनाया है, साथ ही उनका विरोध करने वालों को दुनिया की सारी बुराइयों का प्रतीक बना कर लोगों की नजरों में घृणास्पद भी बना दिया है। ऐसे लोग जब पत्र—पत्रिकाओं या पुस्तकों के जरिये अपनी बात रखने लगते हैं तो उन्हें नास्तिक, धर्मद्रोही एवं बुराई के प्रतीक रावण का वंशज घोषित कर उनकी आवाज को दबाने की कोशिश की जाती है और अधिसंख्य हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को आहत करने की कुचेष्टा बताकर प्रतिबन्धित कर दिया जाता है।"<sup>3</sup> पेरियार ने हिन्दूवादी वर्ण व्यवस्था और राम के बारे में अपनी स्पष्ट राय रखते हैं कि— "वाल्मीकि के राम विचार और कर्म से धूर्त थे। झूठ, कृतघ्नता, दिखावीपन, चालाकी, कठोरता, लोलुपता, निर्दोश लोगों को सताना और कुसंगति जैसे अवगुण उनमें कूट—कूट कर भरे थे। पेरियार कहते हैं कि जब राम ऐसे ही थे और रावण भी ऐसा ही था तो फिर राम अच्छे और रावण बुरा कैसे हो गया?"<sup>4</sup> उन्होंने अपनी पुस्तक 'रामायण : एक अध्यय' (1978) में स्वीकार किया है कि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत एवं उत्तर भारत में विशेष रूप से लोकप्रिय रामायण की इस आधार पर कटु आलोचना की है कि इसमें उत्तर भारत आर्य जातियों को अत्यधिक महत्व दिया गया है और दक्षिण भारतीय द्रविड़ों को क्रूर, हिंसक, अत्याचारी जैसे विशेषण लगाकर न केवल

अपमानित किया गया है बल्कि राम—रावण कलह को केन्द्र बनाकर राम की रावण पर विजय को दैवी शक्ति की आसुरी शक्ति पर, सत्य की असत्य पर और अच्छाई की बुराई पर विजय के रूप में गौरवान्वित किया गया है। सुरेश पंडित के शब्दों में— “ध्यान देने लायक तथ्य यह है कि मूल पुस्तक तमिल में लिखी गई थी और इसका स्पष्ट उद्देश्य तमिल भाषी द्रविड़ों को यह बताना था कि रामायण में उत्तर भारत के आर्य—राम, सीता, लक्ष्मण आदि का उदात्त चरित्र और दक्षिण भारत के द्रविड़—रावण, कुंभकरण, शूर्पणखा आदि का घृणित चरित्र दिखला कर तमिलों का अपमान किया गया है। उनके आचरणों, रीति—रिवाजों को निन्दनीय दिखलाया गया है। लेखक का उद्देश्य जानबूझकर हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुंचाने की बजाय अपनी जाति के साथ हुए अन्याय को दिखलाना भी तो हो सकता है।”<sup>5</sup> द्रविड़ आन्दोलन ने ‘रामायण’ का विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। पेरियार के अनुसार, रामायण दरअसल मध्य एशिया से आये आर्यों की भारत के मूल निवासियों— मुख्यतः द्रविड़ों पर विजय की कथा है। तमिलनाडु के ब्राह्मणों ने आर्यों की सांस्कृतिक श्रेष्ठता की मैक्समूलर की अवधारणा का इस्तेमाल, अपने वर्चस्व को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने कि लिए किया। द्रविड़ आन्दोलन ने इस अवधारणा को अपनी राजनीति का प्रस्थान बिन्दु बनाया। वस्तुतः पेरियार की ‘सच्ची रामायण’ ऐसी अकेली रामायण नहीं है, जो लोक प्रचलित मिथकों को चुनौती देती है और रावण के बहाने द्रविड़ों के प्रति किये गये अन्याय का पर्दाफाश कर उनके साथ मानवोचित न्यायपूर्ण व्यवहार करने की मांग करती है बल्कि दक्षिण से ही एक और रामायण अगस्त 2004 में आई है, जो उसकी अन्तर्वस्तु का समाजशास्त्रियों विश्लेषण करती है और पूरी विश्वासोत्पादक तार्किकता के साथ प्रमाणित करती है कि राम में और अन्य राजाओं में

चरित्रिक दृष्टि से कहीं कोई फर्क नहीं है। वह भी अन्य राजाओं की तरह प्रजाशोषक, साम्राज्य विस्तारक और स्वार्थ सिद्धि हेतु कुछ भी कर गुजरने के लिये सदा तत्पर दिखाई देते हैं। परन्तु यहां हम पेरियार की नजरों से ही वाल्मीकि की रामायण को देखने की कोशिश करते हैं। पेरियार आजीवन सामाजिक और धार्मिक बुराईयों के खिलाफ लड़ते रहे हैं। आज इतने वर्ष बीत जाने के बावजूद भी मौजूदा स्थिति को देखते हुए। पेरियार उतने ही प्रासंगिक लगते हैं जितने की वो अपने समय में थे। दलित बहुजनों को पेरियार से धर्म की कुरीतियों को तार्किक रूप से कैसे सिद्ध करें यह सीखने की जरूरत है। दलित साहित्य की दर्शनिकता उनके इन्हीं तार्किक विचारों का आधार बिन्दू है जिसे सामाजिक समता व न्याय हेतु मानवीय कल्याण के लिए उपयोगी और सार्थक माना जाना चाहिए। केरल में नारायण गुरु ने वर्ण और वर्ग व्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए अछूतोद्वार आन्दोलन चलाया जिससे लोगों में नवजागरण की चेतना आई। यह आन्दोलन दलित साहित्य और दलित चेतना के लिए एक नयी ऊर्जा और नयी किरण थी। उन्होंने अपने दर्शन और विचारों से जन—जन में मुक्ति की चेतना स्पंदित कर दी जो आगे चलकर पूरे केरल को एक नया मार्ग दर्शन मिला। श्री नारायण गुरु ने महसूस किया था कि तथाकथित नीची जातियों में हीन भावना बहुत अधिक है, सैकड़ों वर्षों के शोषण ने उन्हें तोड़कर उनका आत्मविश्वास शून्य कर दिया है, शिक्षा का अभाव है, उनके पास अच्छे रोजगारों के अवसर नहीं के बराबर हैं, आर्थिक विपन्नता और अपने ऊपर थोपे गये अमानवीय सामाजिक नियमों के कारण वे गंदे ढंग से रहने—जीने और खाने के आदी हो गये हैं और इसे ही वे अपनी नियती मानते हैं। सभी अधिकारों से वंचित इनकी व्यथा और पीड़ा को उन्होंने गहराई से

महसूस किया था। दरअसल वे एक ऐसे धर्म की खोज में थे, जहां आम से आम आदमी भी जुड़ाव महसूस कर सके। वे नीची जातियों और जाति से बाहर लोगों को स्वाभिमान से जीते देखना चाहते थे। उस समय केरल में लोग ढेरों देवी-देवताओं की पूजा करते थे। नीच और जाति बाहर लोगों के अपने-अपने आदिम देवता थे। ऊंची जाति के लोग उन्हें नफरत से देखते थे। अपर कास्ट वाले ऐसे देवी-देवताओं की पूजा के लिए लोगों को निरुत्साहित करते थे। उन्होंने वैकम सत्याग्रह शुरू किया इस आंदोलन के तहत उन लोगों को सार्वजनिक स्थानों पर लाने की मांग की जिन्हें समाज में उच्च वर्ग के लोगों के सामने आने की अनुमति नहीं थी और खासतौर से वैकम के मंदिरों में। आई.टी. विभाग, केरल सरकार के अनुसार – ‘वैकम सत्याग्रह के तहत उन लोगों को सार्वजनिक स्थानों पर लाने की मांग की जिन्हें समाज में उच्च वर्ग के लोगों के सामने आने की अनुमति नहीं थी और खासतौर से वैकम के मंदिरों में। पिछड़ी सोच के लोगों ने इसका घोर विरोध किया। मंदिर के अंदर ब्राह्मणों का भोजन करना ईश्वर की आराधना का प्रमुख हिस्सा माना जाता था जो लोग इस आंदोलन के खिलाफ थे उन्होंने इस विधि का समर्थन किया। इसके बारे में दलील दी गई कि यदि अवर्णों को सड़कों पर या फिर मंदिर में आने की अनुमति दी जाएगी तो ईश्वर अपवित्र हो जाएंगे। अग्रणी समुदायों में कुछ ने इस मामले को निपटाने के लिए सत्याग्रह का रास्ता अपनाया तो बड़ी संख्या में जिसमें नायरों के अलावा हिंदुओं की कई जातियों के लोग शामिल थे इन्होंने जस्थे का आयोजन किया, जो त्रावणकोर में महारानी सेतू लक्ष्मी बाई के पहले रुकेगा। यह प्रस्ताव विधायी समिति तक पहुंच गया और इसके तहत मांग की गई कि मंदिर की सड़क को अवर्ण हिंदुओं के लिए भी खोल

दिया जाए।<sup>6</sup> भारत में खासकर हिन्दू समाज में ये रुढ़ियाँ बुरी तरह व्याप्त थी। दक्षिण में यह विसंगति कुछ अधिक ही थी। खासकर केरल का समाज कुरीतियों और पुरातन प्रथाओं के शिकंजे ने बुरी तरह जकड़ा हुआ था। वहाँ अस्पृश्यता ही नहीं, अगम्यता (अछूतों से दूर रहने) की प्रथा जोरों पर थी। श्री नारायण गुरु महान संत होने के साथ साथ वे युगप्रवर्तक विंतक और अद्भुत कर्मयोगी भी थे। वे जानते थे कि समय के साथ छूआछूत जैसी बुराइयां और समाजिक कुरीतियां सनातन धर्म में पैदा हो गयी थीं जिन्हें तत्काल साफ करना किया जरूरी था। आईटी विभाग, केरल सरकार के अनुसार – ‘हिंदू संत एवं सामाजिक उद्धारक श्री नारायण गुरु द्वारा चलाया गया आंदोलन काफी महत्वपूर्ण था। गुरु का जन्म 1856 ईसवी में इजावा समुदाय में हुआ था, जिनका स्थान नंबूदरियों से काफी नीचे है। वे बिना किसी भय के वर्ग व्यवस्था की खुलकर आलोचना किया करते थे। यहां तक कि ब्राह्मणों के आधिपत्य और इजावाओं व अन्य निम्न जातियों की खामियों की भी भी।’<sup>7</sup> बेझिङ्क चर्चा किया करते थे। कुछ समय बाद श्री नारायण गुरु ने इजावा और थियाओं को व्यवस्थित व संगठित करने के लिए रैलियों का आयोजन किया। श्री नारायण के आदर्श सीखों का प्रचार करने वाला साहित्यिक समाज श्री नारायण धर्म पालीपालना योगम (एसएनडीपी) 15 मई 1903 में तैयार हुआ। कुछ ही समय में गुरु और योगम ने कुमारन असान जैसे कार्यकर्ता तैयार किए, जिन्होंने अपने प्रयासों से समाज को कई सदियों तक जोड़ने का प्रयास किया। वैस तो श्रीनारायण कोई दर्शनशस्त्री या नेता नहीं थे। उनके सामाजिक एवं मानवीय प्रसास केवल एक जाति के लोगों के लिए बल्कि यह सम्पूर्ण हिंदुओं के उद्धार का दर्शन बन गया, यहां तक कि ब्राह्मणों का भी। केरल ने कई

शताब्दियों तक वर्ग—व्यवस्था के क्रूरतम रूप को झेला था। यह वर्ग व्यवस्था कभी—कभी इतनी क्रूर हो जाती थी कि निम्न वर्ग के लोगों को न केवल अछूत माना जाता था बल्कि उन्हें लोगों की नजरों से भी दूर रखा जाता था। केरल में एक तिहाई से ज्यादा आबादी अछूत मानी जाती थी और उनके लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों के दरवाजे बंद थे। वे न केवल सरकारी नौकरियों से बाहर रखे जाते थे, बल्कि हिन्दू देवी—देवताओं की पूजा करने, मंदिर जाने तक पर पाबंदी थी। वे अत्यंत गरीबी की हालत में जीने को मजबूर थे। प्रभाकर अग्रवाल लिखते हैं— “नीची जातिवालों के लिये मंदिर, विद्यालय और सार्वजनिक स्थलों में प्रवेश वर्जित था, कूँओं का इस्तेमाल वे कर नहीं सकते थे। नीची जाति के मर्द और औरतों के लिये कमर से ऊपर कपड़े पहनना एक बड़ा गुनाह था। गहने पहनने का तो सवाल ही नहीं था। इन्हें अछूत तो समझा जाता ही था, उनकी परछाइयों से भी लोग दूर रहते थे। बड़े लोगों से कितनी दूर खड़े होना है वह दूरी भी जातियों के आधार पर निर्धारित थी जो 5 फुट से 30 फुट तक थी। कुछ जातियों के लोगों को तो देख भर लेने से छूत लग जाती थी। वे लोग चलते समय जोर—जोर से चिल्लाते हुए जाते थे, मेरे मालिकों, मैं इधर ही आ रहा हूँ कृपया अपनी नजरें घुमा लें। विडंबना तो थी कि निम्न जातियां भी आपस में एक दूसरे को छोटा—बड़ा समझती थीं और वे अपने से छोटी जातियों पर ब्राह्मणों से भी अधिक अत्याचार करते थे। नीची जातियों के लोग अपने बच्चों के सुन्दर और सार्थक नाम भी नहीं रख सकते थे, नाम ऐसे होने चाहिये जिनसे दासता और हीनता का बोध हो। ऐसे किसी भी सामाजिक नियम का उल्लंघन करने पर मौत की सजा निर्धारित थी, भले ही उल्लंघन गलती से हो गया हो।”<sup>8</sup> नारायण गुरु ने बार—बार

मनुष्य को एकता पर बल दिया है। उन्होंने जो रास्ता दिखाया उस पर चलकर केरल की पूरी सामाजिक संरचना ही बदल गयी, केरल की तरक्की के रूप में नतीजा भी सामने है। देश के दूसरे भागों में भी उनके प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावों से यही परिवर्तन लाने की कोशिश की गयी, लेकिन काम अधूरा ही रह गया। उन्होंने दलितों के अन्दर आत्मविश्वास भरकर अपने अधिकार कड़ी मेहनत से प्राप्त करने की शिक्षा दी। उनके आन्दोलन ने 19वीं शताब्दी के अंत तक केरल में अभिव्यक्ति को नई दिशा मिल गई। नारायण गुरु की विचारधारा और उनके आंदोलन ने केरल में लोकतांत्रिक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तन तेजी से लाई। दलित साहित्य में दलित उपेक्षित, शोषित, पीड़ित मानव की असहाय दशा का चित्रण विविध रूप में किया जाता है ठीक वही चित्रण श्री नारायण गुरु अपने विचारों को कविता और लेखों के द्वारा व्यक्त करना शुरू किया। जल्द ही उनके इर्द—गिर्द कवि, साहित्यकार, पत्रकार और लेखकों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हो गया। केरल में के.वी. करुणन कवि हुए जो जाति से अछूत (मछूआरे) थे। इन्होंने शंकराचार्य के ‘अद्वैत दर्शन’ की नयी व्याख्या करते हुए अपनी ‘जाति कुंभी’ नाम से एक लम्बी कविता लिखी। वास्तव में केरल में दलित विमर्श का आंदोलन चलाने वाले नारायण गुरु है। इन्होंने अपनी रचनाओं में ‘जाति मत पूछो, जाति मत बताओ और जाति के बारे में मत सोचो’ के नारे को लोकप्रिय बनाया। डॉ. पल्सु मलयालम के महाकवि कुमारन् आसन, सहोदरन् आदि ऐसे ही लोग थे। ये लोग आजीवन उनके सहयोगी बने रहे। नारायण गुरु के मतों के प्रचार और उनके सुधार अभियान को सफलता की सीमा तक पहुँचाने में इन कवि, साहित्यकारों का बहुत बड़ा योगदान है। बीसवीं सदी में दलित

विमर्श और विस्तृत रूप से साथ दिखाई देती है। बीसवीं सदी के आरंभ काल में कोल्हापुर रियासत में महार, मांग, चमार और ढोर यह चार प्रमुख अछुत जातियां थीं। अछुत जाति के लोगों की सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति बहुत दर्दनाक और बदहाल थी। कोल्हापुर रियासत में छत्रपति साहू महाराज ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने राजा होते हुए भी दलित और शोषित वर्ग के कष्ट को समझा और सदा उनसे निकटता बनाए रखी। साहू जी महाराज समग्र सामाजिक क्रांति के अग्रदूत बहुजन प्रतिपालक राजा के रूप में जाने जाते हैं। हिन्दू समाज चातुर्य-वर्ण व्यवस्था के तहत चार वर्गों में विभाजित था। चारों वर्णों के अधिकार और कर्तव्य निश्चित थे। सबसे ऊपर ब्राह्मण थे। ब्राह्मणों का काम शिक्षा प्राप्त करना, पूजा तथा पंडिताई करना और राज-सत्ता को सलाह देना था। क्षत्रियों का कार्य राज्य की रक्षा करना था। वैष्णों का काम व्यापार और शूद्रों का लोगों की सेवा करना था। एक पांचवा वर्ण और था, अति-शूद्र। अति-शूद्र में अस्पृश्य जातियां आती थी। अस्पृश्य जातियों का काम साफ-सफाई था। शूद्रों और अति-शूद्रों की संख्या अधिक थी मगर, शासन-प्रशासन में उनकी भागीदारी नहीं थी। सेवा के बदले उन्हें मजदूरी पाने का अधिकार भी नहीं था। जो कुछ मिलता, उसी में संतुष्ट रहना पड़ता था, यह हिन्दू धर्म और उनके दर्शन का विधान था। इस विधान का पालन करवाना राज्य का कर्तव्य था। राजा ब्राह्मण मंत्रियों की राय मानने के लिए बाध्य था। ब्राह्मणों ने समाज और राज-सत्ता में खुद को पवित्र और श्रेष्ठ घोषित कर रखा था। लोगों में यह आम धारणा होती थी कि राज-शासन चलाने के लिए किसी राज-वंश में पैदा होना जरूरी है और शायद इसलिए, राजकुमारों का पालन-पोषण विशेष ढंग से किया जाता था। यद्यपि यह मिथक कुछ मौकों पर टूटा है मगर,

ऐसा कम ही हुआ है बहरहाल, मंत्री ब्राह्मण और राजा भी ब्राह्मण या क्षत्रिय हो तो किसी को कोई दिक्कत नहीं थी। मगर, राजा की कुर्सी पर वैश्य या फिर शुद्र वर्ण का कोई शख्स बैठा हो तो दिक्कत स्वाभाविक होनी थी। छत्रपति साहू महाराज क्षत्रिय नहीं, स्पष्ट है कि शूद्र मानी गयी जातियों में आते थे। छत्रपति साहू महाराज की परेशानियों को समझा जा सकता है, कोल्हापुर रियासत के शासन-प्रशासन में पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व निःसंदेह उनकी अभिनव पहल थी। उन्होंने पिछड़ी जातियों समेत समाज के सभी वर्गों के लिए अलग-अलग सरकारी शिक्षण संस्थाएं खोलने की पहल की। यह अनूठी पहल थी उन जातियों को शिक्षित करने के लिए, जो सदियों से उपेक्षित थीं, इस पहल में दलित-पिछड़ी जातियों के बच्चों की शिक्षा के लिए खास प्रयास किये गए थे। महाराष्ट्र में कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति साहूजी महाराज ने पिछड़े वर्गों की गरीबी दूर करने और राज्य प्रशासन में उन्हें उनकी हिस्सेदारी देने के लिए आरक्षण का प्रारम्भ किया था। कोल्हापुर राज्य में पिछड़े वर्गों, समुदायों को नौकरियों में आरक्षण देने के लिए एक अधिसूचना जारी की गयी थी। यह अधिसूचना भारत में दलित वर्गों के कल्याण के लिए आरक्षण उपलब्ध कराने वाला पहला सरकारी आदेश है। छत्रपति शाहू महाराज के दिलों-दिमाग पर अंग्रेजी शिक्षक और अंग्रजी शिक्षा का प्रभाव गहराई से पड़ा था। वे न सिर्फ वैज्ञानिक सोच को मानते थे बल्कि इसे बढ़ावा देने का हर संभव प्रयास करते थे। वे पुरानी प्रथा, परम्परा अथवा काल्पनिक बातों को जरा भी महत्व नहीं देते थे। छत्रपति साहू महाराज अस्पृश्य जाति के लोगों के साथ भोजन करने में भी नहीं झिझकते थे। वे अपने आलोचकों से कहते थे कि उन्हें इस बात कि परवाह नहीं है कि वे क्या सोचते हैं? तब दलित जातियों के

## **पैरोक्तर**

---

महार समाज के लोगों को गांव में उनकी सेवा के एवज में पड़ती (अनुपजाऊ) जमीन का एक छोटा—सा टुकड़ा देने का रिवाज था इसे 'वतन' कहा जाता था। चूँकि, यह उनके परिवार की आवश्यकता के लिए जरा भी पर्याप्त नहीं था, अतरु गांव के लोग महारों को कुछ अनाज देते थे जिसे 'बलुत' कहा जाता था। महार वतन और बलुत ऐसी प्रथा थी कि महार समाज के लोग गांवों में बलात—श्रम के लिए बाध्य थे। साहू महाराज ने एक आदेश निकाल कर इस प्रथा को अपराध करार दिया। ये छत्रपति साहू महाराज ही थे, जिन्होंने 'भारतीय संविधान' के निर्माण में महत्वपूर्व भूमिका निभाने वाले भीमराव अम्बेडकर को उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेजने में अहम भूमिका अदा की। महाराजा—धिराज को बालक भीमराव की तीक्ष्ण बुद्धि के बारे में पता चला तो वे खुद बालक भीमराव का पता लगाकर मुम्बई की सीमेंट परेल चाल में उनसे मिलने गए, ताकि उन्हें किसी सहायता की आवश्यकता हो तो दी जा सके। साहू महाराज ने डॉ. भीमराव अम्बेडकर के 'मूकनायक' समाचार पत्र के प्रकाशन में भी सहायता की। महाराजा के राज्य में कोल्हापुर के अन्दर ही दलित—पिछड़ी जातियों के दर्जनों समाचार पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं। सदियों से जिन लोगों को अपनी बात कहने का हक नहीं था, महाराजा के शासन—प्रशासन ने उन्हें बोलने की स्वतंत्रता प्रदान कर दी थी। आधुनिक काल में दलित आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि फूले, छत्रपति साहू महाराज, पेरियार, नारायण गुरु और डॉ. अम्बेडकर ने अपनी विचारधाराओं और दर्शन से दलित साहित्य को समृद्ध व विस्तृत फलक प्रदान की है। दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा में उसी प्रकार प्रभावित है जैसे प्रगतिवादी, प्रयोगवादी साहित्य में मार्क्स—एंगेल्स की विचारधारा से प्रभावित हैं।

अतरु दलित आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा नवजागरण की सशक्त सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है जो देश, धर्म, जाति तथा लिंग से ऊपर उठकर 'मानवतावाद' को प्रतिष्ठापित करना चाहती है।

## **सहायक ग्रंथ—सूची :**

1. भारती कंवल, दलित विमर्श की भूमिका, इतिहासबोध प्रकाष्ठन, इलाहाबाद, संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या— 106
2. कंवल भारती, दलित साहित्य की अवधारणा, बोधिसत्त्व प्रकाशन, रामपुर, उ. प्र., प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या— 137
3. सम्पादक—मणि प्रेमकुमार, रंजन प्रमोद, जनविकल्प, संयुक्तांक सितम्बर—अक्टूबर, 2007, पृष्ठ संख्या— 22
4. वही, पृष्ठ संख्या— 24
5. वही, पृष्ठ संख्या— 26
6. [http://knowindia.gov.in/hindi/knowindia/state\\_uts.phpid=64](http://knowindia.gov.in/hindi/knowindia/state_uts.phpid=64).
7. [http://knowindia.gov.in/hindi/knowindia/state\\_uts.phpid=64](http://knowindia.gov.in/hindi/knowindia/state_uts.phpid=64)
8. [http://prabhakar-agrawal.blogspot.in/2009/03/blog-post\\_8829.html](http://prabhakar-agrawal.blogspot.in/2009/03/blog-post_8829.html)



## दलित विमर्श : कुछ विचार बिन्दु

रामचरितमानस के उत्तरकांड में एक पंक्ति आती है—

‘अधम जाति मैं विद्या पाएँ।  
भयउँ जया अहि दूध पिआएँ॥

अर्थात् सांप को दूध पिलाने का जो परिणाम होता है वही परिणाम अछूत को विद्या देने पर होता है। सामाजिक जकड़बंदी का यह ढांचा तभी तक सुरक्षित है जबतक अधम जाति के लोग शिक्षित नहीं होते। मध्यकाल से अलग हटकर अगर आधुनिक समय का उदाहरण लेना हो तो चलें डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा ‘मुर्दहिया’ में जहां लेखक ने लिखा है— “एक बार वह पाजामा पहनकर स्कूल चले गए तो गांव के ब्राण ने कहा— ‘बाप के पाद न आवे पूत शंख बजावे।’” यहां तक कि एक दिन उन्होंने स्कूल के बरामदे में खड़ी एक साइकिल के हैंडिल को छू दिया तो साइकिल के मालिक रणवीर सिंह ने पीछे से सिर पर जोर का तमाचा लगाया और कहा— ‘पाजामा पहिर के तोहार दिमगवा खराब होइ गैल है।’

वास्तव में समाज को जनतांत्रिक बनाने में वर्ण और जाति सबसे बड़ी बाधा है और इस जातिवाद को स्थायित्व प्रदान करने का काम धर्म सात्ता ने ही किया है। धर्म की भाषा से तो बड़ी भोली और मासूम होती है लेकिन भीतर ही भीतर संरचनात्मक हिंसा का पूरा तंत्र सक्रिय रहता है। धर्म का यही दुराग्रह कई दुफा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की शक्ल अखित्यार कर लेता है। हमारा आज का दलित विमर्श आज के दलित साहित्यकार इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से किस प्रकार जूझ रहे हैं इसक हम साक्षी हैं। कल्पना करें मध्यकालीन समाज की जब धर्म भारतीय समाज की मानसिकता और आस्मिता का अटूट हिस्सा था, तब दलित, वंचित, शोषित

**डॉ. अर्जुन कुमार**  
हिन्दी विभाग, विश्वभारती

वर्ग से आने वाले रचनाकारों को अपनी अभिव्यक्ति में कितनी मुश्किलें उठानी पड़ी होगी। रैदास, दादू नामदेव जैसे रचनाकारों का कोई समान सैद्धान्तिक आग्रह रहा हो या ना रहा हो परंतु उनकी रचना तत्कालीन परिवेश में कहीं गयी वह पुरजोर आवाज है, जिसके बिना आज के दलित विमर्श को नहीं समझा जा सकता है।

वर्तमान समय में दलित विशर्म समाज और साहित्य में हाशिए पर खड़े लोगों की अस्मिता की पहचान है। आज साहित्य के व्यापक परिदृश्य में राजनैतिक रूप से सचेत दलितों के नए प्रवेश ने इसे साहित्य की मुख्य विधा में शामिल कर दिया है जो मनुवादी वर्ण-व्यवस्था को जलाकर राख कर देना चाहती है और एक स्वस्थ सामाजिक समरसता एवं समता मूलक मानवता को स्थापित करना चाहती है। यह वही आग है, जो शब्दियों से शोषित, दलित, उत्पीड़ित लोगों के हृदय में सुलग रही है और एक दमघोटू वातावरण सृजित कर जीवन की कोमल, विराट और ज्ञान-विज्ञान जनित संवेदना को लांक्षित, वंचित और तिरस्कृत उपेक्षित करती चली है। यह वहीं क्रांति की ज्वाला है, जिससे आहत होकर मध्यकाल में कबीर को कहना पड़ा।

“जौ तुम ब्राह्मन बाह्मनी जाया  
आन राह तूम काहे न आया ॥

इस ब्राह्मणवादी श्रेष्ठ भावना ग्रंथित (Superiority Complex) के विरुद्ध उसके खोखलेपन और रुढ़िवादी चेतना के विरुद्ध कबीर को फटकार और तल्खी कासहारा लेना पड़ा— ‘वेद कितेब छाड़ि देज पॉडे  
ई सब मन के भरमा ॥’

ऊंचे कुल में जनमिया, करनी ऊंच न होय” आदि—आदि। कबीर का यह कथन आज भी किना प्रासंगिक है कि जिसने वेदों को देखा तक नहीं, परायण और स्वाध्याय तो दूर की बात है वे भी द्विवेदी, त्रिवेदी आदि कैसे लगाते हैं। पंडित, पांडे आदि शब्द का कितना अर्थापकर्ष हुआ है यह किसी से छिपा नहीं है। भक्तिकाल के अधिकांश संत कवि इसी दलित वर्ग से आते हैं, लेकिन कहीं भी हीन भावना ग्रंथि का लेशमात्र भी नहीं मिलता यह देखकर थोड़ा आशर्य भी होता है। संत रैदास का यह आत्मस्वीकार कितना उदार और निश्छल है— ‘मेरी जात कमीनी पात कमीनी ओछा जनमु हामरा। तुम शरनागति राजा रामचन्द्र कहि रविदास चमारा।।’

कहने का अर्थ यह कि जिस दलित विमर्श पर आज जोर दिया जा रहा है, उसकी पृष्ठभूमि भक्ति काव्य में ही निर्मित हो चुकी थी। निर्गुणिया संतों का सामाजिक सुधारया समतामूलक समाज की स्थापना के लिए किया गया संघर्ष और फिर उनके विरुद्ध ब्राह्मणवाद या पीड़ित पूजारियों के प्रतिनिधि रूप में सूरदास के भ्रमरगीत में निर्गुण भक्ति का खण्डन आदि उसी दलित विमर्श के प्रामाणिक दस्तावेज हैं। भक्ति शील सौन्दर्य के उपासक समन्यवादी तुलसी की कुछ पंवितयां दलित विमर्श के संदर्भ में बार—बार उद्धृत होती आयी है। उन पर पुनः विचार करना श्रेयस्कर होगा—

‘पूजीय विप्र शील गुण हीना  
शूद्र न गुण मन ज्ञान प्रवीणा।।’

या

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ...

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रथमतः शील गुण से हीन ब्राह्मणों को पूज्य ठहराया गया है उदात्त चरित्र के शूद्र उपेक्षित, वंचित रखने का आग्रह किया गया है। मुझे ऐसा लगता है कि या तो

यह तुलसी के किसी दुर्बल हृदय की अभिव्यक्ति है या तत्कालीन ब्राह्मण समाज में शूद्रों के प्रति फैले दृष्टिकोण का यथार्थ और व्यंग्यात्मक चित्रण, क्योंकि शब्दी के जूठे वेर राम को खिलाने के कारण ब्राह्मण समाज का जो कोपभाजन तुलसी को बनना पड़ा था, वह किसी से छिपा नहीं है।

बहरहाल आज दलित शब्द का प्रयोग दो रूप में हो रहा है, पहला रूप सामाजिक है इस रूप को चिंतकों ने अपने—अपने ढंग से परिभाषित किया है। अरुण कुमार दूबे इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं— ‘दलित शब्द का प्रयोग सबसे पहले सत्तर के दशक में बाबा साहब के अनुनायियों ने किया था। इस शब्द में अन्तर्निहित था कि जिसे तोड़ दिया गया है और जिसे उसके सामाजिक दर्जे से ऊपर बैठे लोगों ने जानबुझकर नियोजित रूप से कुचल डाला है। इस शब्द में छुआछूत सिद्धांत और जातिगत श्रेणीक्रम निहित है।’<sup>11</sup> वहीं दलित शब्द का दूसरा रूप साहित्यिक है जो आज साहित्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो गया है। यो तो दलित अनुप्राणित साहित्य या प्रगतिवादी साहित्य का एक बड़ा भाग इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है। निराला, प्रेचंद, नागार्जुन आदि के साहित्य में दलित वर्गों की समस्याएं और संवेदनाएं जीवंत रूप में चित्रित हुई हैं। लेकिन सांप्रतिक दलित साहित्य अपने नए रूपाकार और एक नई चेतना के साथ अस्तित्व में आ रहा है। यह समाज के अग्रगामी चिंतकों पर निर्भर करता है कि वे इस पुनर्विचार को कौन सी दिशा देते हैं। दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर प्रेम कुमार मणि के अनुसार “दलितों के लिए दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है।” और इसी प्रकार की तमाम परिभाषाएं दलित चिंतकों ने दी हैं।

वस्ततः दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर और महात्मा फूले के विचारों से प्रेरित एक साहित्यिक आंदोलन है जो भाग्य-भगवान्, अंधविश्वास, पूजा-पाठ, कर्म-काण्ड, स्वर्ग-नरक, पाप-पूण्य की अवधारणा को नहीं मानता। वह 'ब्रह्मसत्य जगत मिथ्या' को नहीं मानकर 'जगत सत्य ब्रह्म मिथ्या' में विश्वास करता है। वहीं पर प्रगतिवादी या मार्क्सवादी साहित्य में सर्वहारावर्ग के लिए रोटी की समस्या प्रमुख नहीं है, बल्कि वर्ग वैशम्य है। लेकिन दलित साहित्य में सबसे बड़ी समस्या समाजिक सम्मान और मर्यादित जीवन की है। इसलिए दलित साहित्यकार तथा कथाकथित प्रगतिशील और प्रगतिवादियों से भिन्न अस्तित्व रखते हैं। उनकी दृष्टि में यातना, संघर्ष, और स्वप्न के खंभों पर खड़ा साहित्य सर्वहारा या आम-आदमी का हो सकता है। आम-आदमी की सारी वेदना—संवेदना केवल आर्थिक अभाव अथवा शोषण पर केन्द्रित होगी, जबकि दलित का दर्द आर्थिक से ज्यादा सामाजिक है। वर्ण और जाति के कारण धृणा और अपमान का जो दाह-दंश पग—पग पर इन्हें झेलना पड़ता है वह आर्थिक विषमता के दंश से हजार गुणा अधिक मार्मिक है, भयावह है, त्रासदायक है। और यही कारण है दलित चिंतकों ने गैर दलित लेखकों द्वारा दलितों के बारे में लिखे गए साहित्य को खारिज करने का काम किया और सहानुभूति के बजाय स्वानुभूति सत्य को अधिक महत्व दिया। कुछ उसी प्रकार जिस प्रकार मीरा कहती है—

"घायल की गति घायल जानै..

इस प्रकार दलित चिंतकों का मानना है कि दलित के प्रति किए गए अपमान, तिरस्कार अपेक्षा से उत्पन्न त्रासद संवेदना को एक दलित जिस प्रकार अनुभव कर सकता है, गैर दलित

उस स्तर पर जाकर उस संवेदना को नहीं प्राप्त कर सकता। रीतिकालीन कवियों की कुछ उक्तियां इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं—

'सीख लीनो मीन मृग, लोगहिं लगे कवित  
बनिवत। मोहि तो मेरो बनावत।'

इन उक्तियों में भी अनुभूति पक्ष पर सर्वाधिक बल दिया गया है। आधुनिक युग में भी देखें तो अनुभूति की प्रामाणिकता, भोगे हुए यथार्थ को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसलिए अकारण नहीं है कि दलित साहित्यकार 'हरिजन, शूद्र, सर्वहारा जैसे परंपरागत शब्दों से अपने को अलग मानते हैं क्योंकि ये नाम गैर दलितों के द्वारा दिए गये हैं, जिनमें सहानुभूति है, एक ऐतिहासिक अन्याय के लिए पश्चाताप भी है।

बहरहाल, स्वानुभूति और सहानुभूति को स्पष्ट करने के लिए गैर दलित लेखक देवेन्द्र दीपक की एक रूपात्मक टिप्पणी उद्धृत करना चाहूँगा कि 'अस्पृश्यता एक अंधा कुआं है, कुआं में गिरे आदमी को लेकर चिन्ता के दो स्तर हैं एक चिन्ता उस व्यक्ति की चिन्ता है जो कुआं से बाहर निकलने की कोशिश में लहूलुहान हो रहा है। दूसरी चिन्ता उस व्यक्ति की चिन्ता है, जो कुआं की जगत पर खड़ा होकर कुआं में गिरे व्यक्ति दलित है और कुआं के जगत पर खड़ा व्यक्ति सर्वण है। दलित की चिन्ता आहत की चिन्ता है और सर्वण की चिन्ता सदाशयी की चिन्ता है।'

स्पष्टतः एक दलित अपने समस्त दाह-दीप्ति दंशन के साथ अपे अपमान बोध को जिस प्रकार संप्रेषित अभिव्यंजित कर सकता है, वहीं दाह-दीप्ति-दंशन और दलित के साहित्य में नहीं मिल सकता है, हालांकि गैर दलितों की तत्त्व टिप्पणियां ध्यान जरूर खींचती हैं। उदाहरण के लिए रागदरबारी में श्रीलाल शुक्ल ने लिखा है— "चमरही गांव के एक मुहल्ले का नाम था जिसमें चमार रहते थे चमार एक जाति का नाम

है जिसे अछूत माना जाता है। अछूत एक प्रकार के दुपाये का नाम है जिसे लोग संविधान लागू होने से पहले छूते नहीं थे। संविधान एक कविता का नाम है जिसे अनुच्छेद-17 में छुआछूत खत्म कर दी गयी है, क्योंकि इस देश में लोग कविता के सहारे नहीं, बल्कि धर्म के साहारे रहते हैं। और क्योंकि छुआछूत इस देश का एक धर्म है इसलिए शिवपालगंज में भी दूसरे गांवों की तरह अछूतों के अलग—अलग मुहल्ले थे” बावजूद इसके दलित चिंतकों ने दलित साहित्य के लिए कुछ मानदण्ड बनाए हैं इसी मानदण्ड के आधार पर भिक्षुक या फिर उनका यह कथन “श्रुति निगमागम शब्द शूद्र के कानों में शीशी भरते, मंत्रोत्सार किया तो उसका सर उतार सब दुखहरते। दलित चिंतकों की नजर में स्वानुभूति नहीं, सहानुभूति है। इसी प्रकार मैला आंचल में दिखायें गए संथाली औरतों के प्रति अत्याचार, व्यभिचार या फिर ‘गोदान’ के हरिजन प्रसंग भी सहानुभूति के अंतर्गत हो जाएंगे। अब सवाल उठता है कि क्या दलित साहित्य वही होगा जो दलितों द्वारा लिखा गया हो, जैसा कि अनेक दलित चिंतक मानते थे, हमें यह नहीं भुलना चाहिए कि श्रेष्ठ साहित्य के लिए केवल जीवनानुभव का होना ही पर्याप्त नहीं है, साहित्य के लिए विश्वदृष्टि का होना भी जरूरी है, हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि दलित साहित्य जिसके पास जीवनानुभव साथ—साथ गहरी विश्वदृष्टि भी गैर दलित लेखक द्वारा लिखे साहित्य से निःसंदेह अधिक प्रामाणिक होगा।

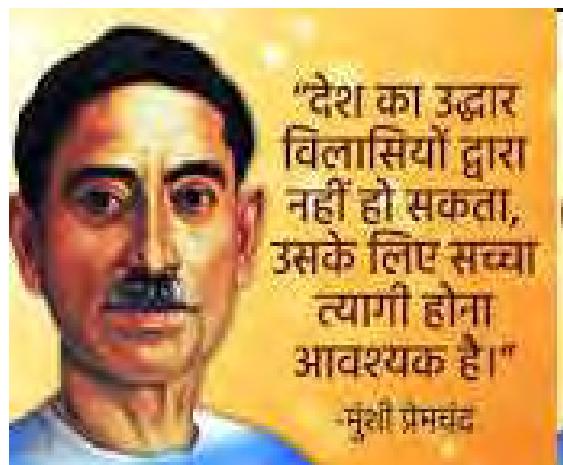
आज दलित साहित्य पर अनेक प्रश्नचिह्न उठा रहे हैं प्रश्न उठता है कि क्या दलित साहित्य अलगाववाद का साहित्य है, जो केवल दलितों के लिए ही पठनीय है ? यदि

ऐसा है तो इससे साहित्य संसार को अपार क्षति पहुंचेगी। लेकिन यदि हम परंपरावादी, रुढ़िवादी व्यामोह से उपर उठकर नितान्त बौद्धिक और सहृदय रूप से विचार करें तो दलित साहित्य सबकी बराबरी और भाईचारे का समर्थक है। हमें यह गंभीरता से सोचना चाहिए कि क्या दलितों और गैर दलितों की समाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति भिन्न नहीं हैं, दोनों के सोच व्यवहार, चिन्तन अलग—अलग नहीं है। यदि दोनों स्थिति अलग—अलग हैं तो इसके साहित्य भी अलग—अलग होंगे।

वैसे भी साहित्य में प्रत्येक 5—10 वर्षों में विविधाद—विवाद—संवाद और प्रतिक्रियावाद से हम सभी अभ्यस्त हो चुके हैं। हकीकत यह भी है कि जिस महाराष्ट्र से इस चेतना का प्रसार हिन्दी प्रदेश में हआ उस प्रदेश में ही ‘दलित’ शब्द को खारिज किया जा रहा है। वहां के युवा साहित्यकार इसके बदले में अबाह्यणी साहित्य अम्बेडकर साहित्य, बहुजनवादी साहित्य, जेस अस्मितामूलक नामों के पक्ष में खड़े हो रहे हैं हिन्दी प्रदेश में भी दलित विमर्श को लेकर अनेक तहर की विरोधाभासी विचार आ रहे हैं। बहरहाल समाज साहित्य की कुछ कटु सच्चाई भी है यदि एक दलित मात्र जन्म से दलित है, लेकिन उसकी अनुभूति तथाकथित अभिजात्य या परंपरावादी है तो वह भी दलित साहित्यकार नहीं हो सकता। हां उसका लाभ जरूर उठा सकता है।

कोई भी रचना अपना प्रमाण स्वयं है कि वह स्वानुभूति की सहज उच्छ्ल अभिव्यक्ति है या ओढ़ी हुई नितान्त कृत्रिम। आज का दलित साहित्यकार यदि अपने संपूर्ण दाह—दीप्ति—दंशन के साथ उपस्थित हो रहा है तो इससे सासिहत्य संसार समृद्ध ही होगा— इसमें कोई संदेह नहीं

जैसा कि हम जानते हैं भोगे हुए यथार्थ को अपनी पूरी तीव्रता में सामने रखने के प्रयास में दलित विमर्श की मुक्कमल शुरुआत आत्मकथा के माध्यम से हुआ था लेकिन आज यह विमर्श आत्मकथा तक ही सीमित न रहकर कविता, कहानी या साहित्य की अन्य सभी विधाओं में अपना स्थान बना लिया है। इस विमर्श ने साहित्य के परंपरागत सौंदर्य की बजाय, नए संवेदनाशास्त्र का भी निर्माण कर लिया है, जिसे देखकर खुशी तो होती है कि साहित्य का विषय क्षेत्र कितना फैल रहा है, लेकिन थोड़ी चिन्ता भी कि साहित्य को हम और कितना बांटेंगे? लेकिन संतोष इस बात का है कि साहित्य क्षेत्र के इस महत्वपूर्ण हिस्से पर साहित्यकारों की नजर पूरी जिंदगी के साथ जा रही है, इससे इतना तो स्पष्ट है कि इस विमर्श का भविष्य उज्ज्वल है।



### संदर्भ सूची :

1. आधुनिकता के आइने में दलित साहित्य—अरुण कुमार, दुष्ट, पृ. 196

### सुविचार

हिन्दी भाषा हमारे विचारों के लिए सर्वोत्तम पोशाक है।

गर्व हमें है हिन्दी पर, शान हमारी हिन्दी है, कहते—सुनते हिन्दी पर, पहचान हमारी हिन्दी है।

## हिन्दी के आरंभिक उपन्यास (1877–1916) एक सर्वेक्षण

विश्व साहित्य में उपन्यास लेखन की विद्या का संबंध समाज एवं संस्कृति के आधुनिकीकरण के साथ जुड़ा है। आधुनिक जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति उपन्यास के फलक पर ही सम्भव है। उपन्यास आज के जीवन का महाकाव्य है। युग जीवन की समस्त जटिलता एवं संशिलष्टा की पूर्ण अभिव्यक्ति उपन्यास नामक विद्या में ही मिल सकती है। अगर हम यह कहें कि किसी युग विशेष की समस्त प्रवृत्ति को जानने के लिए उपन्यास के दर्पण का इस्तेमाल करना आवश्यक होता है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अतः देखा जाय तो उपन्यास युग विशेष के दर्पण का काम करता है।

हिन्दी में आरंभिक उपन्यास लेखन की परम्परा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से शुरू होकर लगभग डेढ़ सौ वर्षों का सफर पूरा कर चुकी हैं। हिन्दी में मुंशी प्रेमचन्द को उपन्यास सप्राट का गौरव प्राप्त है। अतः उपन्यास लेखन का काल-विभाजन प्रेमचन्द के नाम से ही किया जाता है— प्रेमचन्द युग, प्रेचन्द पूर्व युग एवं प्रेचन्दोत्तर युग। प्रेमचन्द के महत्व को स्वीकार करते हुए भी मैं उनके लेखन काल से पूर्व युग के उपन्यास लेखन के प्रति उत्सुक हूँ।

उपन्यासों के बारे में जानने की ललक ने मुझे हमेशा हिन्दी उपन्यास लेखन के उस युग की तरफ खींचा है जिसे बड़ा ही अमहत्वपूर्ण एवं उपेक्षित समझा जाता रहा है। इस युग के उपन्यासों के कलेवर में घटना प्रधान तथा उद्देश्य में मनोरंजन प्रधान मानकर उसके गुरुत्व पर ध्यान नहीं दिया जाता है। मुझे लगता है कि हमें हिन्दी उपन्यास लेखन के आरंभिक युग धारा की भी पड़ताल करनी चाहिए। हमें उन सूत्रों को ढूँढना तथा विश्लेषित करना चाहिए जिसने परवर्ती काल में हिन्दी उपन्यास को

**नगीना लाल दास (शोधार्थी)**

हिन्दी विभाग

कलकत्ता विश्वविद्यालय

युगान्तकारी रूप प्रदान किया। हमें उन उपस्थितियों एवं प्रवृत्तियों को भी खोज निकालना चाहिए जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को मजबूत जमीन दी। वस्तुतः उन्नीसवीं सदी की उत्तरार्द्ध भारतेन्दु युगीन साहित्यिक विशेषताओं को लिए हुए हैं। नवजागरण की लहर समस्त भारतीय साहित्य में श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना में सहयोग दिया है। मैंने हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों का समय सीमा श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास ‘भाग्यवती’ (1877) से प्रेमचन्द के ‘सेवासदन’ (1916) तक माना है। ‘सेवासदन’ एक युगान्तकारी उपन्यास है। ‘सेवासदन’ से पूर्व के तमाम उपन्यासों को मैंने हिन्दी के आरंभिक उपन्यास के रूप में गिना हैं। भारत की मुक्ति की लड़ाई, राष्ट्रीयता की भावना, समाज सुधार की प्रबलता तथा जड़ता एवं कट्टरता से अलग कल्पना की रहस्यमयी उड़ान इस युग की विशेषता रही है।

हिन्दी में उपन्यास लेखन की परम्परा लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुरानी है। कालक्रम के आधार पर इस लम्बी परम्परा को वर्गीकृत करने का काम साधारणतः प्रेमचन्द को केन्द्र में रख कर किया जाता है। प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्द पूर्व युग एवं प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास के नाम से मोटे तौर पर पूरी उपन्यास यात्रा नप तल जाती है। मानवीय राग, मनोभाव, विचार, अनुभूति, स्वप्न एवं कल्पना की कलात्मक आभिव्यक्ति ही साहित्य है। साहित्य की विविध विधाएँ काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि सभी अपने-अपने ढंग से जीवन की व्याख्या करते हैं। किन्तु महाकाव्य, नाटक तथा कहानी द्वारा

प्रस्तुत जीवन की व्याख्या में यार्थथता की वह प्रतीती नहीं होती जो उपन्यास में होती है। इसका कारण यह है कि उपन्यास में जिस सहज, स्वाभाविक जीवन का चित्रण होता है, उसका अभाव साहित्य की अन्य विधाओं में होता है।

डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में— “उपन्यास यथार्थ की प्रतिष्ठाया है, जिससे मानव जीवन का चित्रण होता है। अतः उपन्यास का यथार्थ व्यापक रूप से सामाजिक होता है। उपन्यास का विषय प्रमुखतः मनुष्य के सामाजिक जीवन से संबंधित होता है जो अनेक विषमताओं, द्वंद्वों एवं संघर्षों में धिरा शोषण का शिकार बना रहता है और उपेक्षणीय एवं दयनीय जीवन जीता है। उपन्यास इस प्रकार वाह्य उसका पूर्ण ईमानदारी से चित्रण करता है। वह एक विषयीगत दर्पण के समान है। जिसमें बहुमुखी मानवीय समस्याओं का चित्रण होता है।”<sup>1</sup> यही कारण है कि साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास का विशिष्ट स्थान है। अतएव इसके पठन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह साहित्य की अन्य विधाओं में संभव नहीं है।

उपन्यास आधुनिक जीवन की विषमताओं, विचित्रताओं, समस्याओं तथा मन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को सफल अभिव्यक्ति देने के लिए आया है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में— “उपन्यास आधुनिक युग की देन है जो भारतीय संस्कृति के रस से सिक्त होकर पूर्ववर्ती साहित्य की आधार भूमि में उगकर विज्ञान किरणों से उष्मा प्राप्त कर पाश्चात्य साहित्य की सुखद वायु में पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है।”<sup>2</sup> वास्तव में उपन्यास ने मानव चेतना को विषद और गम्भीर बनाया है। जीवन का प्रभावोत्पादक और रोचक निरूपण उपन्यास के द्वारा ही होता है। फलतः उपन्यास अपने स्वरूप में उन्मुक्त है, जीवन की खुली अभिव्यक्ति करने में सक्षम है।

यूरोप में उपन्यास का लेखन 18वीं सदी में शुरू हो गया था। लेकिन भारत में भारतीय भाषाओं में उपन्यास सीधे—सीधे आधुनिक काल की देन है। जिसकी शुरूआत 19वीं सदी से होती है। आगे पीछे सभी भारतीय भाषाओं में उपन्यास आधुनिक काल में ही संभव हुआ। रेवती रमण अपने लेख “भारतीय उपन्यास का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन शीर्षक में लिखा है— “आधुनिक भारत में उपन्यास का उदय पाश्चात्य शिक्षा सभ्यता के प्रसार के दौरान हुआ। भारतीय उपन्यास शुरू में उपदेशाख्यान की शैली में लिखे गए।”<sup>3</sup> 1857 में पहले स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ माना जाता है— यानी बंगाल के आधुनिक काल के काफी बाद। अंग्रेजों ने आने के साथ ही कई काम किये समाज की आर्थिक संरचना थोड़ी बदली। जमींदार, महाजन, किसान मजदूर जैसी वर्गीय पहचान बनी। नये वर्ग संबंध बने। उपनिवेशवाद ने नया ढाचा बनाया। प्रेस की रक्षापना के साथ छपाई कला विकसित हुई। अखबार निकलने लगे। भारतेन्दु युग में कई पत्रिकाएँ निकली। नयी तरह की शिक्षा पद्धति का आरंभ हुआ जिसे अंग्रेजी शिक्षा के नाम से जाना गया। मध्यवर्ग प्रमुख रूप से सामने आया। स्त्री शिक्षा के पक्ष में स्थितियाँ बनी और उसका विस्तार हुआ। स्त्रियों से संबंधित पत्रिकाएँ की निकली। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय रंगमंच पर उपन्यास का उदय अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही संभव हो पाया। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास का स्वरूप इतना शक्तिशाली इसलिए है कि उसमें साहित्य की सारी विधाओं की छवियों को सन्निहित कर लेने की शक्ति है। उपन्यास निश्चय ही आधुनिक काल की एक बहुत ही शक्तिशाली और जनप्रिय विधा है। हिन्दी उपन्यास साहित्य का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन—काल में हुआ। भारतेन्दु ने

उपन्यास के महत्व को समझ कर हिन्दी में पहली बार उसकी ओर संकेत किया। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के मुख्यपृष्ठ पर विषय का जो विवरण मिलता है, उसमें उपन्यास को भी स्थान मिला।

भारतेन्दु को हम हिन्दी उपन्यास का प्रवर्तक या जन्मदाता भले ही ना स्वीकार करे परंतु इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने एक विशिष्ट दिशा का निर्देश करके अपने समसामयिकों को उधर बढ़ने के लिए प्रेरित किया। भारतेन्दु की साधना फलवती हुई और उनके मंडल के अनेक साहित्यकार तथा अन्य अनेक स्वतंत्र सम—सामायिक उपन्यास रचना में प्रवृत्त हुई। हिन्दी उपन्यास का सूत्रपात हुआ और उनकी अनेक घटनाएँ प्रवाहित हो उठी। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्य के शब्दों में 'भारतेन्दु' के उदय के साथ ही हिन्दी उपन्यास क्षेत्र भी प्रकाशित होने लगा। हिन्दी में प्रथम उपन्यास 'पूर्णप्रकाश' और 'चन्द्रमा' भारतेन्दु की देन है। सामाजिक कुरीतियों की ओर स्पष्ट संकेत व्यंग्य पूर्ण शैली में करके गम्भीर विषयों का प्रतिपादन उपन्यास द्वारा इसके पश्चात् होने लगा। इस उपन्यास में पहली बार प्रगतिशील विचारों को प्रश्रय मिला और प्रतिक्रियावादी तत्वों का छास दिखाया गया। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ पुरातन और नवीन का संघि स्थल है। जहाँ से प्रगति की ओर अग्रसर होने के कारण उपन्यास तीव्रता से विकसित हो चला।<sup>4</sup>

इस प्रकार भारतेन्दु ने उपन्यास के क्षेत्र में स्वंय मौलिक उपन्यास लिखकर अपने समकालीन अन्य उपन्यासकारों को प्रोत्साहित किया तथा उपन्यास विकास के अनुकूल वातावरण तैयार किया। उन्होंने किशोरीलाल गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, राधाचरण गोस्वामी, कार्तिकप्रसाद खन्त्री, गोपालराम गहमरी, गोकुलनाथ और राधाकृष्ण दास आदि को उत्साहित करके जो

पथ प्रदर्शन किया उससे हिन्दी उपन्यास—भण्डार वैविध्य की ओर तीव्रता से अग्रसर होने लगा।

हिन्दी उपन्यासों का उद्भव और विकास के संबंध में सम्यक धारणा बनाने के लिए प्रारम्भ से आज तक के विकास को तीन काल खंडों में विभाजित करके देखना उचित होगा— 1. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास 2. प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास 3. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य का काल—विभाजन नीचे लिखे प्रकार से किया जा सकता— 1. प्रेमचंद—पूर्व युग, सन् 1882 से सन् 1918 तक, 'परीक्षा गुरु' से 'सेवासदन' तक। 2. प्रेमचंद युग, सन् 1918 से 1936 तक, 'सेवासदन' से 'सुनीता' तक, 3. प्रेमचंदोत्तर—युग, सन् 1936 से आज तक।

डॉ. मक्खनलाल शर्मा ने हिन्दी उपन्यास के काल—विभाजन पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं— "विभाजन का तात्पर्य केवल यह रहा है कि इस युग की एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति या साहित्यिक विशेषताओं का प्राधान्य रहा। हिन्दी उपन्यास में अपने अल्पकालीन जीवन में ही भारी प्रगति कर ली है, जब तक उसका काल—विभाजन करके विशेषताओं का उल्लेख न होगा, तब तक सब कुछ अस्पष्ट ही रह जायेगा। यूरोप आदि में, जहाँ इस प्रकार के काल—विभाजन विश्लेषण में सहायक सिद्ध हो रहे हैं, वहाँ हिन्दी के विद्वान उपन्यास की विशेषताओं और उपलब्धियों की दृष्टि से उसे हम तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं— 1. प्रारम्भिक युग (इसे नीतिपरक और जासूसी उपन्यास काल कहा जा सकता है)— 1800—1918 ई., 2. प्रेमचंद युग, सन् 1918 से 1936 तक, 'सेवासदन' से 'सुनीता' तक, 3. प्रेमचंदोत्तर युग— सन् 1936 से आज तक।"<sup>5</sup>

उपन्यास मात्र कथात्मक गद्य नहीं यह मानव जीवन का गद्य है। उपन्यास ऐसी कला

है जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। उपन्यास लोक जीवन के गहरे अनुभव को चित्रित करता है। बावजूद इसके हिन्दी उपन्यास में प्रमुख सामाजिक मुद्दों पर विचार प्रकट किया गया है। ‘भाग्यवती’ और ‘परीक्षा गुरु’ इस दृष्टि से प्रमुख उपन्यास है। इसके अतिरिक्त अनेक उपन्यासों में सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विषयों को भी उठाया गया है जिसमें नवजागरण की अपेक्षा चारित्रिक सुधारमूलक पुनरुत्थानवादी धारणाएँ अधिक प्रकट हुई हैं। और जासूसी उपन्यास भी लिखे गए हैं। देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उपन्यास आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ विधा माना गया है। जिसने सर्वाधिक पाठक वर्ग तैयार किया। हिन्दी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा रिष्टा है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिन्दी भाषी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया विलम्ब से प्रारंभ हुई। अतः हिन्दी में ‘उपन्यास’ विधा का आरंभ भी बंगला और मराठी की अपेक्षा विलम्ब से ही हुआ। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र में पुनर्जागरण का आरंभ 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से माना जाता है किन्तु सामाजिक क्षेत्र में पुनर्जागरण का आरंभ मुख्यतः ‘आर्य—समाज’ (1875) की स्थापना और उसके आन्दोलन के साथ हुआ। बंगाल से आरंभ हुए पुनर्जागरण की लहर 1860 ई. के आस—पास हिन्दी भाषा क्षेत्र को छूने लगी थी। स्त्री—शिक्षा का आन्दोलन, विधवा—विवाह का समर्थन, बाल और वृद्ध विवाह का विरोध आदि इसी के परिचायक थे। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का आंदोलन भी इसी की अभिव्यक्ति था। दुर्भाग्य से वह अंग्रेजी विरोधी आन्दोलन न होकर उर्दू विरोधी आन्दोलन बन गया था, जिसके पीछे अंग्रेजी शासन की साजिश भी थी, पर उसके पीछे अपनी भाषा का

प्रेम प्रेरक तत्व था, इसमें दो मत नहीं हो सकते। सातवें दशक के लगभग अंत में आरंभ हुए खड़ी बोली हिन्दी साहित्य के आन्दोलन के मूल में भी पुनर्जागरण की प्रेरणा ही प्रमुख थी।

उपर्युक्त तथ्यों से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों में पुनरुत्थान की प्रवृत्ति को ही प्रमुखता मिली है। हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों के उदय में नवजागरण की एक अहम भूमिका रही है। जिसे भूलाया नहीं जा सकता है। जिसने हिन्दी साहित्य को नई दिशा प्रदान की तथा हिन्दी उपन्यास के नींव को तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी उपन्यास का एक विषाल मंच तैयार हुआ। जिसके निर्देशक उस दौर के महान उपन्यासकार ही थे और पाठक उसके नायक जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को दुनिया के रंगमंच पर प्रस्तुत करने में सराहनीय भूमिका अदा की।

उपन्यास साहित्य ने बराबर प्रगतिशीलता की ओर ही चरण बढ़ाए हैं। जिनमें हिन्दी के आरंभिक उपन्यासकारों द्वारा लिखे गए। ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा मनोरंजन प्रधान उपन्यासों की एक अहम भूमिका रही है जिनको हम कभी भी नजरअंदाज या नकार नहीं सकते हैं क्योंकि उस समय के उपन्यासों की महान सामाजिक भूमिका रही है जिसको विस्तार से समझने के लिए हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों को कथा वस्तु की दृष्टि से उपन्यासों का वर्गीकरण करना आवश्यक हो जाता है। उपन्यास नए युग की नयी अभिव्यक्ति का नया रूप है। साहित्य के रूपों के उद्भव के संबंध में यह एक अखंड सत्य है। इन सबका वर्गीकरण प्रस्तुत करने के लिए हमें सर्वप्रथम शास्त्रीय वर्गीकरण का सिद्धांत ही स्थिर करना पड़ेगा।

यद्यपि हिन्दी उपन्यास की लोकप्रियता देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास से ही बढ़नी

प्रारम्भ हुई थी। उसकी दृढ़ पृष्ठभूमि भारतेन्दु युग (सन् 1850–1900 ई.) के प्रथम चरण से ही तैयार होने लग गई थी। इस पृष्ठभूमि को तैयार करने में भारतेन्दु युग के हिन्दी साहित्य का ही योग नहीं था, बल्कि उस युग की अनिश्चित राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों तथा उसके उत्तरार्द्ध में चले समाज सुधार के विविध आंदोलनों का भी उसमें विशेष हाथ रहा। इसलिए पहले उस युग की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर भी विचार किया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उपन्यास भी अपने काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है और उन्हें प्रभावित करता भी है। इसलिए कथा—लेखन के प्रेरक तत्व के संदर्भ में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि आलोच्य काल की परिस्थिति का सिंहावलोकन हो जो उस समय के कथा—लेखन के प्रेरक तत्व बने तथा उस स्थिति को प्रकाश में लाता है। जिसके कारण उस समय के उपन्यासकार तिलिस्मी, ऐय्यारी, जासूसी, ऐतिहासिक, रोमांटिक तथा राजनीतिक उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित हुए एवं इसके पीछे उनका उद्देश्य क्या था? इस प्रकार विभिन्न तथ्यों एवं आधारों पर मैंने विचार किया है। जिसके आधार पर उस काल के कई उपन्यासकार विभिन्न उपन्यासों की रचना करने में सफल हुए।

इस युग के उपन्यासकारों का प्रमुख दृष्टिकोण हिन्दी उपन्यासों के लिए उपयुक्त और लोकप्रिय वातावरण तैयार करना था, जिसे हिन्दी उपन्यास अधिक से अधिक पाठकों तक पहुंच सके। इसके लिए उन्होंने उपन्यासों में कलात्मक और रोमांचकारी प्रसंगों को अधिक से अधिक स्थान दिया। ऐसी घटनाओं और प्रसंगों को स्थान दिया गया जिसे पढ़ते ही पाठक

उछल पड़ते थे और इस तरह की दूसरी कृतियों को पढ़ने के लिए व्यग्र रहते हैं। कहा जाता है कि बाबू देवकीनंदन खत्री के 'चन्द्रकांता संतति' को पढ़ने के लिए ऐसे पाठक जो हिन्दी नहीं जानते थे हिन्दी सीखने की कोशिश करने लगे और असंख्य मात्रा में पाठकों ने हिन्दी सीखी भी थी इसने एक बहुत बड़ा हिन्दी पाठक वर्ग तैयार कर दिया जिसको हिन्दी भाषा के विकास संदर्भ में कभी भूलाया नहीं जा सकता। इस प्रकार इस युग के उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यासों के उज्ज्वल भविष्य की मजबूत आधारशिला रखी तथा एक विशाल पाठक मंच तैयार किया।

हिन्दी उपन्यास प्रारम्भ से ही सुधारवादी दृष्टिकोण लेकर आया था। आगे चलकर हिन्दी के अनेक आरम्भिक उपन्यासकारों ने समाज या धर्म को सुधारने की चेष्टा में ही एक से बढ़कर एक वैविध्यपूर्ण उपन्यासों की रचना की। वास्तव में उस समय नाटकों के अतिरिक्त केवल उपन्यास लेखन ही ऐसा साधन था जिसके द्वारा समाज के दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया है। डॉ. बद्री दास के शब्दों में 'हिन्दी उपन्यास 19वीं सदी की संतान है। साहित्य के इस नए युग का जन्म नए भारत के जन्म के साथ हुआ और नए भारत की भाँति ही यह अंग्रेजी सम्पर्क की देन है। अंग्रेजी सम्पर्क से उपन्यास की विधा ही नहीं मिली, उससे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में वे परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई जिनसे उपन्यास का विकास सम्भव हुआ।'<sup>6</sup>

आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में विकास तथा उन्नतशीलता की दृष्टि से तो उपन्यास का विशेष महत्व है ही, आधुनिक सभ्यता और संस्कृति की यथार्थ चेतना के बाहर और प्रसारक के रूप में भी उपन्यास का स्थान विशिष्ट है। इसलिए उपन्यास क्षेत्रीय प्रगति से केवल साहित्यिक

विकास का आशय ही नहीं ग्रहण करना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में उपन्यास अपने परम्परागत शैली से पृथक् एक विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। स्वरूप, तत्व तथा क्षेत्रीयता की दृष्टि से न केवल वह अपने रूढ़ स्वरूप का परित्याग कर चुका है, वरन् प्रशस्ति का भी परिचय दे चुका है। डॉ. सच्चिदानन्द राय के शब्दों में 'उपन्यास गद्यमय कथा का ऐसा सर्वमुक् बहुसमावेशक और लचीला साहित्य रूप है जो अपनी विशेषताओं के कारण आज सर्वाधिक लोकप्रिय बना हुआ है। इसका कारण यह है कि इसमें मानव जीवन की जटिलतम स्थितियों अनुभूतियों, भावनाओं, विषमताओं तथा विविधताओं को इस रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो अपनी व्यापकता के कारण हमारे लिए अत्यंत आकर्षक बन जाती है।'<sup>7</sup> इस दृष्टि से आधुनिक उपन्यास सांस्कृतिक विकास और उपलब्धियों का साहित्यिक प्रतीक कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इस युग में लगभग चालीस वर्षों (1877–1916) की अवधि में प्रचुरता से उपन्यास की सृष्टि हुई। अपने शैशव एवं किशोरावस्था में हिन्दी उपन्यास अधिकतर अद्भुत, अलौकिक घटना, व्यापारों में विस्मय—विमुग्ध सा उलझा रहा। उसने हमें मनमाने ढंग से तिलिस्मी की सैर कराई, ऐयारी के आश्चर्यजनक करिश्मे दिखाए और जासूसी के कारनामों से चमत्कृत करता रहा। यह सब होते हुए भी उसमें जगत और जीवन के प्रति तीव्र आकांक्षा थी। तथा साथ ही उसने तत्कालीन सामाजिक गतिविधियों के अनुसरण का भी प्रयास किया। अतः हम कह सकते हैं कि मानव जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जिसमें उपन्यास की पहुँच अथवा प्रवेश न हो। साहित्य के अन्य सभी माध्यमों की अपेक्षा उपन्यास की भावी संभावनाओं का क्षेत्र अधिक प्रशस्त है।

### संदर्भ सूची :

1. सिन्हा, डॉ. सुरेश, हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, जगदीश चन्द्रगुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-1, प्रथम संस्करण— 1965, पृष्ठ भूमिका—1
2. सिंह, डॉ. त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, संस्करण— 1960, पृ. 7
3. रमण, रेवती, समकालीन भारतीय साहित्य, साहित्य अकादेमी की त्रैमासिक पत्रिका, अंक नवम्बर—दिसम्बर—2013, संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अंक—170, पृ. 177
4. वाशर्णी, डॉ. लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिशद् इलाहाबाद यूनीवर्सिटी, संस्करण—1954, पृ. 94—95
5. शर्मा, डॉ. मक्खनलाल, हिन्दी उपन्यासः सिद्धांत और समीक्षा, प्रभात प्रकाशन—205, चावड़ी बाजार दिल्ली—6, प्रथम संस्करण—1965, पृ. 239—240
6. डॉ. बद्रीदास, हिन्दी उपन्यासः पृष्ठभूमि परम्परा, ग्रंथम राजबाग प्रकाशन, कानपुर—12, प्रकाशन वर्ष—अक्टूबर— 1996, पृ. 98
7. राय, डॉ. सच्चिदानन्द, हिन्दी उपन्यास एवं मानवतावादी चेतना, राजीव प्रकाशन, अलोपीबाग, इलाहाबाद—6, प्रथम संस्करण— 1979, पृष्ठ—ग (आमुख)

## राजेश जोशी की कविता में स्त्री-स्वर

सत्तर के दशक से लेकर अबतक जिन समकालीन कवियों की लंबी सूची रही है, उनमें राजेश जाशी एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। इनकी काव्य-यात्रा सन 1972 ई० के आस-पास शुरू होता है। सन 1977 ई० में इनकी लंबी कविता—‘समरगाथा’ का प्रकाशन होता है जो उनके काव्य-यात्रा एवं सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रथम सौपान है। तब से लेकर अबतक इनकी कुल आठ काव्य-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं जो इस प्रकार है—‘एक दिन बोलेंगे पेड़’ (1980), ‘मिट्टी का चेहरा’(1985), ‘नेपथ्य में हँसी’(1994), ‘गेंद निराली मिठू की’ (1989), ‘दो पंक्तियों के बीच’ (2000),‘चाँद की वर्तनी’(2006), ‘जिद’(2015) और ‘उलंधन’(2021)। ‘धूप घड़ी’ उनके प्रथम और द्वितीय काव्य-संकलन का संयुक्त प्रकाशन है। ‘दो पंक्तियों के बीच’ पर आपको सन 2002 ई० में ‘साहित्य अकादमी पुरस्कार’ से सम्मानित भी किया जा चुका है। राजेश जोशी की कविताओं में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि विसंगतियों का विरोध हुआ है।

सामाजिक स्तर पर भारतीय समाज में बहुत सारी समस्याएँ हैं। उन्हीं में से एक है—स्त्री समस्या जिसका विरोध लगभग साहित्य के सभी विधाओं में हुआ है और हो रहा है। स्त्रियाँ अति प्राचीन काल से शारीरिक और मानसिक शोषण, दोहन और अत्याचार के शिकार होती आ रही हैं। पुरुषवर्चस्व समाज स्त्री को वस्तु, खिलौना एवं मनोरंजन के साधन के रूप में उपयोग किया है। उन्हें आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। समाज में स्त्रियों का दायरा आज भी सीमित है जिसका अब खुलकर विरोध होना शुरू हो गया है। राजेश जोशी लिखते हैं, “समाज का वर्गीय ढाँचा अपने आप में अन्याय पर आधारित संरचना है। वह मनुष्य

प्रो. मकेश्वर रजक  
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग  
मानकर कॉलेज, बर्द्धमान (प. बंगाल)

और मनुष्य के बीच फर्क करती है। पुरुषसत्तात्मक समाज अन्याय पर आधारित संरचना है। वह स्त्री और पुरुष के बीच भेद करता है। उनके अधिकारों के बारे में भेद करता है। समान अधिकार का दावा करने वाली लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में भी क्या सबको समान अधिकार मिल पाते हैं?”<sup>1</sup> कहना न होगा कि स्त्रियाँ घर से लेकर बाहर तक इस भेदभाव के शिकार हैं। ताकत का केंद्र चाहे राजनीति हो, समाज हो या धर्म, इसमें पीसी जाती हैं तो केवल स्त्रियाँ ही और यह सिलसिला घर से शुरू होता है और बहुत दूर तक जाता है। स्त्री-शोषण-तंत्र के विरुद्ध आज स्त्रियाँ भी सामने आ रही हैं हैं। राजेश जोशी के ही शब्दों में, “स्त्री अपनी अस्मिता का संघर्ष ही नहीं कर रही हैं, उसने विगत शताब्दियों के इतिहास के अँधेरों से बाहर आकर पहली बार समाज में एक जगह को हासिल भी किया है।”<sup>2</sup> उनके अस्तित्व और अस्मिता की इस लड़ाई में अधिकांश पुरुष रचनाकार का सहयोग मिल रहा है। राजेश जोशी उन्हीं में से एक हैं। वे अपनी कविताओं में स्त्री जीवन की दयनीय दशा पर कभी दुःखी होते हैं तो कभी उत्तेजित। प्रगतिशील विचारधारा के कवि होने के नाते उनका उत्तेजना स्वाभाविक है।

परंपरागत सामाजिक और धार्मिक, ढाँचा, रुढ़ियाँ, अंधविश्वास तथा अशिक्षा स्त्रियों के जीवन को जकड़ रखा है। एक तरफ धर्म का खेल है तो दूसरी तरफ पितृसत्तात्मक वर्चस्व। स्त्रियाँ इन दोनों के बीच फंसी हैं। मसलन राजेश जोशी ‘पत्ता तुलसी का’ कविता के माध्यम से इन्हीं सामाजिक और धार्मिक रुढ़ियों का विरोध करते हैं। इस कविता में तुलसी का

पत्ता धार्मिक और सामाजिक अंधविश्वासों और रुद्धियों की ओर पत्ते में क्या है/धर्म है पत्ते में तुलसी के। और धर्म में/धर्म में क्या है/सीली लकड़ियाँ हैं धर्म में धुआँती हैं जिसमें आँखें बिंदा की।”<sup>3</sup>

बिंदा के धर्म में सीली अर्थात् आद्र और भींगी हुई लकड़ियाँ हैं जिनमें उसकी आंखे धुआँती हैं। उस धुएँ में अँधेरा और अँधेरे में बिंदा की आँसू है जो उसके जीवन की घोर विवशता और अपमान की ओर संकेत करता है। कवि आगे लिखते हैं— “अँधेरे में/अँधेरे में क्या है/महाजन है अँधेरे में मालिक है खेत का/गिरती है जिसके लिए बिंदा रोज रात/अपमान में”<sup>4</sup>

घर, परिवार, समाज और धर्म तो स्त्रियों का शोषण किया ही है, व्यवस्था और सत्ता भी इन्हें कम विवश नहीं किया है। स्त्रियों के प्रति सत्ता के शक्ति का खूँखार प्रदर्शन राजेश जोशी की कविता—“रैली में स्त्रियाँ” में देखा जा सकता है। सत्ता पक्ष अपनी राजनीतिक लाभ के लिए स्त्रियों का दुरुपयोग रैली के रूप में करती है। सत्ता पक्ष यह नहीं देखती है कि ये स्त्रियाँ अपने घर—परिवार और बच्चों के लिए कितनी चिंतित हैं। अपने ताकत का इस्तेमाल करते हुये स्त्रियों को डरा—धमका कर रैली में शामिल होने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। कवि इस कविता में स्त्रियों की विवशता को बड़े ही यथार्थवादी रूप में चित्रित किया है। हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की यह शायद पहली कविता होगी। स्त्रियाँ घर के सारे कामों को छोड़कर रैली में शामिल होती हैं। कुछ स्त्रियों के गोद में उनके दूध—मुंहे बच्चे भी हैं। कुछ बच्चे माँ के आंचल पकड़कर धूप और गर्मी में पैदल चल रहे हैं। रामवीर सिंह के शब्दों में, “ऐसा नहीं कि स्त्रियाँ विजय के दर्प से भरी हुई हैं। वे चिंताग्रस्त हैं, दुःखी हैं और अनिश्ट की आशंकाओं से डरी हुई हैं। उनके साथ भी वह सबकुछ हो सकता है जो प्रायः

गरीब लोंगों की रैलियों के साथ होता है— सत्ता की शक्ति का खूँखार प्रदर्शन।”<sup>5</sup> कुछ स्त्रियाँ तो अपनी मासूम बेटियों को घर में छोड़कर आई हैं जिसकी चिंता उन्हें सता रही है क्योंकि वे पुरुषवर्चस्व समाज से भली—भाँति परिचित हैं। उसे अपने शराबी पति पर भरोसा नहीं है। कवि लिखते हैं— “कहीं बिना बात न पीटा हो बेटी को उनके शराबी पति ने कि सुबह से ही कहीं कलारी पर न जा बैठा हो उनका आदमी कितनी ही बातें मथ रही हैं उनके मन को।”<sup>6</sup>

कविता के अंत में निचोड़ देते हुये कवि स्त्री की तुलना पृथ्वी से करते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी अपनी धूरी पर लगातार धूमती हुई कभी नहीं थकती है, उसी प्रकार स्त्रियाँ अपनी विवशताओं के बावजूद भी रैली में नहीं थकती हैं। जिस प्रकार पृथ्वी को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन है कि उसके गर्भ में कितने ज्वालामुखी धधक रहे हैं, उसी प्रकार रैली में शामिल स्त्रियों को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन है कि उनके भीतर कितना आक्रोश, बेचौनी और छटपटाहट है। भले ही उनके आँखों में आँसू है, पर यह आँसू उनके हार की नहीं, बल्कि सत्ता के प्रति आक्रोश का आँसू है। और जब उनके गुस्सा और आक्रोश का बाँध टूटेगा तो इसमें सत्ता का विनाश निश्चित है। कहना न होगा कि अब स्त्रियाँ जागृत हो चुकी हैं। वे सत्ता के समीकरण को भली—भाँति समझने लगी हैं। यही कारण है कि अब वे सत्ता के इशारे पर न तो रैली में जाना स्वीकार करती है और न ही उनकी गुलामी। कवि राजेश जोशी लिखते हैं— “रैली में चलती स्त्रियाँ/जैसे ब्रह्मांड में अनथक चलती पृथ्वी को देखना है बाहर वह जितना दिख रही है/उससे उसके सपनों और उसके नामुकिन है/उसकी आँख में असमय आया

आँसू/उसकी हार का नहीं उसके गुस्से का बाँध दरक जाने का संकेत है”।<sup>7</sup>

‘उसकी परछाई’ कविता स्त्री की अस्तित्व की लड़ाई है। पुरुषवर्चस्व समाज किस प्रकार अपने शक्ति द्वारा स्त्रियों को कैद कर रखा है, इसे सहज ही इस कविता में देखा जा सकता है। इस कविता में ‘चिड़िया’ और ‘बाज’— ये दो महत्वपूर्ण शब्द हैं जो कोमल स्त्री और कठोर पुरुश का प्रतीक हैं। स्त्री पूरे सम्मान के साथ स्वतंत्र विचरन करना चाहती है, जबकि पुरुषवर्चस्व समाज उसे पिंजड़े से पक्षी की तरह कैद कर रखना चाहता है। स्त्री सदैव अपने बच्चों एवं परिवार का हिफाजत करना चाहती है, वहीं बाज के रूप में पुरुष शक्ति सदैव उसे झापटता रहता है। आज की स्त्रियाँ इस प्रकार पुरुषवादी मानसिकता से लगातार लड़ रही हैं।

कवि का संकेत है कि आखिरकार स्त्रियाँ कब तक पिंजरे में कैद रहेंगी? अर्थात् कब तक गुलामी की जंजीरों में जकड़ी रहेंगी? पुरुषों की भाँति उनका भी अपना जीवन है, उन्हें भी स्वतंत्र जीने का अधिकार है। अब वे ‘बेचारी’ बन कर रहना नहीं चाहती हैं। पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्धियां हासिल कर रही हैं, तथापि पुरुषवर्चस्व समाज उन्हें हीनता की ही दृष्टि से देखता है। वे अब सचेत हो गई हैं। यही कारण है कि वे अब पिंजरे के खिलाफ स्वच्छ हवा, उजाले, नीले आकाश, अपने घर-परिवार की हिफाजत, दाना-पानी और तिनके के लिए बाज रूपी पुरुश से लड़ रही हैं। ये हवा, पानी, आकाश, दाना-पानी, तिनका आदि प्रतीकात्मक षब्द हैं जो प्रत्येक दृष्टिकोण से स्त्री की आजादी, अधिकार और उनके अस्तित्व की माँग करता है। राजेश जोशी लिखते हैं— “एक चिड़िया/पिंजरे के खिलाफ/हवा के लिए लड़ रही है एक चिड़िया/उजाले और आकाश/के लिए लड़

रही है एक चिड़िया/अपने गीत और अंडे की हिफाजत अपने दाने और तिनके/के लिए लड़ रही है। लड़ रही है/बाज से”।<sup>8</sup>

राजेश जोशी समय की गतिविधियों से भली—भाँति परिचित हैं। यूं तो शोषण, अत्याचार, हत्या, बलात्कार आदि सामाजिक विसंगतियाँ सर्वत्र व्याप्त हैं, पर ध्यान से देखा जाय तो स्त्रियाँ सबसे अधिक इन विसंगतियों की शिकार हुई हैं। एक छोटी अबोध बच्ची, लड़की या युवती रास्ते में चलते हुये सदैव अपने को असुरक्षित महसूस करती है। उसे भय इस बात की है कि न जाने किस ओर से कोई दरिंदा आकार उसे दबोच लेगा। राजेश जोशी इसे ‘समय के स्वप्न की चीख’ कहते हैं। समाज अंदरे में डूब चुका है। यह एक लड़की या औरत की बात नहीं है, बल्कि पूरे समाज के लिए यह कलंक का विषय है। कितनी विकट स्थिति है, जब एक मासूम लड़की अपने जीवन की मधुर स्मृतियों में खोई रहती है और अचानक पीछे से कोई दरिंदा उसपर आक्रमण कर उसके जीवन को क्षत—विक्षत कर देता है। यह कैसी विडम्बना है कि एक लड़की, जो अभी—अभी अपने जीवन का शुरुआत कर रही होती है और मधुर सपने देख रही होती है, यह समाज एक ही क्षण में उसके अधिकार को छिन लेता है। वर्तमान प्रबुध समाज को इस पर गहराई से सोचना चाहिए। राजेश जोशी ‘समय के स्वप्न की चीख’ कविता में इन विंदुओं पर गहराई से दृष्टिपात करते हैं। कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप यहाँ द्रष्टव्य हैं— “नाव की आड़ में एक लड़की खड़ी है अकेली/उसे किसी का इंतजार है लेकिन लड़की की पीठ पर बढ़ते अंधेरे से निकल रहे हैं कुछ खूँखार अश्वारोही लड़की के सपनों पर घात लगाए बढ़ी आ रही है समुद्र की एक हिंसक लहर और प्रायः ऐसा है।”<sup>9</sup>

छायावादी कवि जयषंकर प्रसाद तो स्त्री को 'श्रद्धा' कहा। एक स्त्री जब बच्चे को जन्म देती है तो वह बच्चा किसी धर्म विशेष का नहीं होता है। बाद में उसे धर्म के सँचे में ढाल दिया जाता है। और यहीं से समाज में मतभेद उत्पन्न हो जाता है। वर्तमान समाज में स्त्रियों के साथ भी ऐसा ही हो रहा है। राजेश जोशी की कविता—'पागल' में कुछ ऐसे ही प्रसंग उठाए गए हैं। दंगाइयों का एक गिरोह एक लड़की के साथ दुर्व्यवहार करना चाहता है। वह लड़की से बार—बार पूछता है कि वह हिन्दू है या मुसलमान? कुछ लोग उन दंगाइयों को समझाने का प्रयास करता है की वह जनाना अर्थात् औरत है जो पागल है। लेकिन दंगाई उस व्यक्ति के उत्तर से संतुष्ट नहीं होता है और पुनः उस लड़की से वही सवाल करता है। अब सवाल यह है कि यदि वह लड़की हिन्दू होगी तो दंगाई उसे छोड़ देगा और मुस्लिम होगी तो उसे मार देगा। ठीक उसी प्रकार यदि वह मुस्लिम होगी तो दंगाई उसे छोड़ देगा और हिन्दू होगी तो उसे मार देगा। अर्थात् यहाँ लड़की की जान और इज्जत दंगाइयों के धर्म पर निर्भर करता है। यह एक ऐसा उलझा हुआ सवाल है जिसका उत्तर न समाज के पास है और ना ही व्यवस्था के पास। एक स्त्री को हिन्दू मुसलमान, सिख या ईसाई के तराजू पर कतौलना कहाँ तक उचित है? लड़की दंगाइयों इस सवाल पर जोर—जोर से हँसती है, मानो वह धर्म और व्यवस्था पर प्रहार कर रही हो। कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं— पंद्रह या सोलह बरस की उस लड़की के कपड़े/जगह—जगह से फटे हुए थे वह एक पेड़ के नीचे खड़ी कभी रोने लगती/कभी हँसने लगती तभी दंगाइयों का एक गिरोह आया/और उनमें से एक जोर से चिल्लाया : ए लड़की तू हिन्दू है या मुसलमान इसके बाद एक सन्नाटा छा गया/लेकिन तभी वह लड़की जोर—जोर से हँसने लगी।"<sup>10</sup>

स्त्रियाँ आशावान होती हैं। उनपर सामाजिक प्रहार लगातार हो रहे हैं, तथापि वे जीना चाहती हैं इस आशा और विश्वास के साथ कि कभी तो उनके जीवन में प्रकाश फैलेगा। और प्रकृति के विभिन्न उपादान उनके आशाओं को जीवित रखने में सहायता करते हैं। 'आखिरी पत्ती' कविता में कवि राजेश जोशी अपने इसी सोच को स्पष्ट करने की कोशिश की है। कवि कहते हैं कि उस लड़की के घर के सामने अनेक हरे—भरे पेड़—पौधों के बीच एक ऐसा भी पेड़ है जो सूखा है। इसमें एक भी हरी पत्ती नहीं है। उस पेड़ पर एक हरा तोता बार—बार आकर बैठता है मानो वह उस पेड़ के अंतिम पत्ती का पुनर्जन्म हो। दूसरे अनुच्छेद में कवि यह कहते हैं कि सामने के मकान में जो लड़की रहती है, वह जीवन से निराश हो चुकी है। वह बार—बार सूखे पेड़ की डाली पर बैठा हरा तोता को देखती है और उसे ही हरी पत्ती मान लेती है। उसे देख कर वह जीना चाहती है। उसे लगता है कि जिस दिन वह हरी पत्ती पेड़ से झार जाएगी, उस दिन उसकी भी जीवन लीला समाप्त हो जाएगी। लेकिन वह हरा तोता उस लड़की को भ्रम में डालकर जीवित रखना चाहता है कि उस पेड़ के अंतिम हरी पत्ती के रूप में वह मौजूद है। इस प्रकार वह हरा तोता उस लड़की को ऊर्जा प्रदान करता रहता है। कहना न होगा कि प्रकृति भी चाहती है कि स्त्री का मूल इस धरा पर बरकरार रहे। स्त्री को समाज में जीना होगा, लेकिन हरे तोते को हरी पत्ती समझकर नहीं, बल्कि जीने का स्वतंत्र अधिकार के साथ और पूरे मान—मर्यादा के साथ। कवि इस कविता में लिखते हैं— "घर के ऐन सामने अनेक हरे—भरे पेड़ों के बीच/एक निचाट सूखा पेड़ है/जिसमें एक भी हरी पत्ती नहीं एक हरा तोता बार—बार उसी पर आकर बैठता है/जैसे वह उसी पेड़ से टूटी अंतिम पत्ती का पुनर्जन्म हो सामने के किसी मकान

## **पैरोक्तर**

---

में मान बैठी है कि जिस भी दिन अंतिम हरी पत्ती/पेड़ से झार जाएगी उसका जीवन लीला भी खत्म हो जाएगा/तोता शायद बार—बार आकर उसे भ्रम में डालना चाहता है कि वह अंतिम हरी पत्ती अभी मौजूद है।<sup>11</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजेश जोशी अपनी विभिन्न कविताओं के माध्यम से स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर किया है। स्त्रियाँ नाना प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक विसंगतियों को झेलते हुये अपने दायित्व को भली—भांति निभा रही है। स्त्री के प्रति कवि का चिंतन और सोच अति प्रासंगिक और विचारणीय है। हमें स्त्रियाँ को निरीह प्राणी, वस्तु या खिलौना न समझ कर उन्हें उनका सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार देना होगा ताकि वे सम्मान पूर्वक जी सके एवं देश और समाज विकास की प्रक्रिया में साकारात्मक योगदान दे सके।

### **संदर्भ—सूची :**

1. जोशी, राजेश, वह हँसी बहुत कुछ कहती थी, सेतु प्रकाशन, संस्करण—2020, पृ. 135
2. वही, पृ. 140
3. जोशी, राजेश, धूप घड़ी (एक दिन बोलेंगे पेड़), राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2014, पृ. 72
4. वही, पृ. 72
5. सिंह, रामवीर (संपादक), आधुनिक काव्य संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, संस्करण— 2013, पृ. 473
6. जोशी, राजेश, चाँद की वर्तनी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2013, पृ. 32
7. वही, पृ. 33

8. जोशी, राजेश, धूप घड़ी (एक दिन बोलेंगे पेड़), राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2014, पृ. 24—25
9. जोशी, राजेश, दो पक्तियों के बीच, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2014, पृ. 86
10. जोशी, राजेश, चाँद की वर्तनी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2013, पृ. 68—69
11. जोशी, राजेश, जिद, राजकमल प्रकाशन संस्करण— 2015, पृ. 93

.....

**स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है,  
संतोष सबसे बड़ा धन है,  
वफादारी सबसे बड़ी संबंध है।**

**— गौतम बुद्ध**

## खबरों के इलाके में कविता : रघुवीर सहाय

किसी रचनाकार के खाली पड़े सिरहाने और पैताने तक की अस्त-व्यस्त खाली पड़ी पसरी दुनिया से कुछ भी बटोरकर, सहेजकर, समेट कर, एकत्रित कर उसके जाने के बाद बचे हुए नगदी दिनों की तपतीश करना बिल्कुल वैसा ही है, जैसे शिकारी के खाली मचान और बंधी हुई बकरी के खाली खुंटे को देखकर गोलियों की आवाज और तीव्रता का अनुमान लगाना, और जमीन पर पाँव के निशाँ देखकर यह पहचान करना कि ये चीता, शेर, बाघ, तेंदुआ, या कुछ और था। शिकारी की जमीन पर पड़ी बंदूक देखकर ये धारणा बनाना कि शिकारी को सँभलने का मौका शायद नहीं मिला और वो मचान से फिसलकर या अनजाने ही अपने बेसुधपने में धँसक कर नीचे आ गिरा होगा। उसकी मौत एक 'रहस्यनामा' या फिर 'अकस्मात हादसे का शिकार' या 'अनहोनी' या फिर 'होनी थी सो हो गयी, फिर खूब छानबीन करने पर कुछ धब्बे लहू के पाकर यह अंदाजा लगाना कि शिकार कितनी बेरहमी और क्रूरता से मारा गया। उसे कितनी दूरी तक ले जाकर घसीटते हुए उसकी पसलियों का मर्दन किया गया होगा और इन तमाम साक्ष्यों को आधार बनाकर एक साफ सुथरी खबर बनाना। यकीनन ये काम भी बेहद मुश्किल, पूर्वाग्रह और दुराग्रह से भरा है— 'एक समय था' कविता संग्रह कुछ इसी तरह की पूर्वपीठिका 'ये अन्तिम कवितायें' से भरा हुआ है। कविता के बहाने आदमी और दुनिया को समझाने से कहीं ज्यादा कविता को लेखन कारखाने में चिट-पुर्जों, निमंत्रणपत्रों की सादी पीठ, लिफाफे के रिक्त स्थानों, सूचनापत्रों, और फिर अंत में ऐसे भी संवाद मिल ही सिगरेट की डिब्बियों आदि—आदिपर खोजने की जद्दोजहद प्राक्कथन में साफ झलकती है।

**डॉ. अनिल पुष्कर**

जायेंगे, जो ये कहते नहीं अघाते कि कवि अन्तिम समय में किस अवस्था, किस मिजाज, किस मानसिक दशा से गुजरा है और जब कुछ और नहीं सूझता, तो कवि की सूझाबूझ, तुक मिजाजी, बेतकल्लुफी, को कविताओं से तुक मिलाकर उसके अन्तिम पहर के समय से जोड़कर कविताओं का व्यक्तिगत तौर पर स्थूल अर्थ की तलाश, अर्थ खोजने के क्रम में कुछ लक्षणों के साथ उसका मिलान करने लग जाते हैं।

क्या ये एक निहायत संजीदा कवि के साथ न्यायप्रियता और कविता की शास्वत्ता का सन्देश दे रहे हैं ? या वो ये कहने की कोशिश कर रहे हैं कि कवि अपने अन्तिम दौर में खुद को ही जीवन के आखिरी समय की अन्तिम खबर की तरह पेश कर रहा है? क्या मृत्यु की चीत्कार पर दहाड़ देने वाला कवि निस्सहाय, निरुपाय भी कभी हो सकता है भला? यकीनन नहीं, मृत्यु पर कवि का साधक रूप, नियंता कितना प्रबल है— "और फिर अंत में छाँटने लग गया इनमें से काम का एक कागज जीवन के अन्तिम दिन यही करते हुए इस कोठरी की रद्दी उसमें रखते हुए चल बसा— "एक समय था' कविता—संग्रह, पृष्ठ, 149।

इतना ही नहीं, कवि को मरने के पूर्व ही मृत्यु का पूर्व—आभास और मृत्यु के पार भी जीवन जीने की इच्छा बेहद सबल है। और कवि इस बात को कहने में जरा भी नहीं सकुचाता कि "काम का एक कागज" उसे किस रूप में पाने की इच्छा है— "अभी कुछ दिन और जिंदा रहँगा। अधूरे लेखों को पूरा नहीं कर पाया तो घर में जमा कागजों को छाँटना है और बहुत से काम के बर्तन हटाने हैं जो कभी सहसा

किसी की मेजबानी के वास्ते रखे थे आखिर ये अधिलिखी डायरियां लिए कहाँ—कहाँ तक जाऊँगा। कवि मृत्यु से नहीं घबराता, न ही हारता है, न ही उससे जीवन की भीख मँगता है, न गिड़गिड़ता है, न ही मृत्यु को अन्तिम सत्य कहकर जीवन का विराम चाहता है, वो मृत्यु को बार—बार कविता में ला—लाकर जीवन की बची हुई अधूरी कामनाओं को पूरा करता चलता है। इसीलिए वो यह कहता है, कभी ‘बल बसा’ कभी कहता है ‘और जिंदा रहूँगा’ कभी ‘मैं बच रहा’ मैं मर चुका हूँ ‘मेरे मरने पर’ मैं अगर गया तो ‘मुझे अभी जीना है’ कवि मृत्यु से कर्तई बेपरवाह होकर उससे कई—कई तरह की पहेलियों नुमा बातें रखता है जैसे— ‘तो मैं आराम से मरता अगर मरा हुआ पैदा होता।

कवि इन पंक्तियों में साफ तौर पर ये कह रहा है कि मरा हुआ पैदा होने पर भी उसे उसमें जीवन की बू आ रही है, वो हर स्थिति में जीवन को ही स्वीकारता है मृत्यु उसके लिए जीवन से अधिक महत्त्व नहीं रखती। इसीलिए वो पुनः कह उठता है— यह संसार बार—बार मर जाता है मेरे लिए और मैं जिंदा रहता हूँ और अगर संसार उस कवि को जिंदा जान पड़ता है जिसमें जीवन की संभावना, जीवेषणा, जीवन की तिश्नगी, जीवन—राग, जीवन का कोलाहल, जीवन की मृदुता, हर क्षण जीवन का आभास जिस रूप में भी नजर आता है तब वो और अंदाज में कहता है— फिर जब यह जिंदा होता है मैं कुछ और जिंदा हो जाता हूँ बार—बार इसमें जीवन खत्म हो जाता है।

कवि आजाद हिन्दुस्तान की दयनीय स्थिति को जानकर कहता है— ‘हम एक मुश्किल समय में जीते हैं आजादी जिस दर्द से पाई गयी थी, उसमें अनगिनत कुर्बानियां, शहादतें, नए सूत्रधार पैदा करने वाली सख्तियां वीरांगनाओं

की हसरतों भरी जिंदगियाँ थी। कवि की नजर में अब ‘सिफ कुछ पट्टियां हैं फाहे हैं मरहम है। और ये सब कुछ महसूसने वाला कवि मृत्यु को पछाड़कर, मृत्यु को बारम्बार खंगालते हुए, मृत्यु का सामना किये, मृत्यु को छलते हुए, जीवन की ओर बढ़ने के लिए मृत्यु को तर्क से टटोलते, बरगलाते, ठिठोली करते, मृत्यु से आसक्त न होकर कहता है— ‘दस बरस और जियूँ और अपने सामने उन्हें मरता देखूँ।

कवि मृत्यु पर पुनर्विचार, भी करता है। मृत्यु को कुछ और समय तक टालमटोल करते हुए उसे दिग्भ्रमित करने के लिए भी वो लोगों का आश्रय और उनका विश्वास हासिल करना चाहता है कि किसी तरह मृत्यु का पटाक्षेप हो तो कवि उसमें भी जीवन का अंश, जीवन का आहवान देखते हुए मृत्यु को अपना सके।

मृत्यु यूँ न आये कि सब कुछ झाड़कर ले जाए। अब तक तमाम संकल्पनाओं में जीता आदमी एकदम से शून्य में दाखिल हो जाए और दुनिया के ताने—बाने के शोर से विरत सन्नाटे में विचरण करती मृत्यु का ही साम्राज्य हो। मानो कवि ये चाहता है उसके लिए मृत्यु आपाधापी भरे जीवन की ही महिमा का गान भरा हो। एक बार लोग क्षमा कर देते तो मरता चौन से कहता है थका वृद्ध किन्तु अभय मिलते ही मरने की चाह छोड़ देता है। लोग नए सिरे से क्षमा के विषय पर विचारने लगते हैं।

यहाँ रघुवीर सहाय उस वृद्ध के बहाने खुद ही लोगों के विश्वास को भी जीवन जीने की अद्भुत शक्ति के आकर्षण में सवालिया धेरे में रख देते हैं, कि लोग क्षमा पर पुनः विचार करें। मृत्यु को लेकर सी संकल्पना यकीनन तमाम ख्यातिनाम कवियों में अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

रघुवीर सहाय के लिए मृत्यु जैसे रंगमंच पर किसी किरदार का भरा पूरा अभिनय हो और वो किरदार सफलतापूर्वक उसमें कलाबाजियां दिखाता मृत्यु को भ्रमित करने, भाँति-भाँति से कुशलतापूर्वक पराजित करने की मंशा लिए अनेकों अभेद्य लोक रचता हो। उसके लिए मृत्यु किसी खल-चरित्र की भाँति तो बिल्कुल नहीं है। हाँ वो उसे विदूषक के बतौर भले ही देखता हो। तभी तो कवि को इस बात का भी एहसास है: “मृत्यु के सामने होने से सब यथार्थ एक में जुङता है।”

रघुवीर सहाय जब मृत्यु से तमाम उधेड़बुन कर चुकते हैं, वे कतई मृत्यु से कतराते नहीं, बगल नहीं होते, धकियाते नहीं, ऊंधते-ऊबते नहीं, वो मृत्यु को जीवन की नित निजी क्षणों में शामिल किये मृत्यु का लिबास ओढ़कर उसके समक्ष खुद ही यह कहने लग जाते हैं। ऐसा लंबा जीवन ही क्या मृत्यु नहीं है और जो खड़ी लगती है वह नहीं है मृत्यु।

रघुवीर सहाय मृत्यु को कविता की प्रयोगशाला में रखकर उसे हर प्रकार से निरीक्षण करते-करते इतने मजबूत हृदय और बेखौफ होते चले गए कि अब वो इन हालातों में दूसरों की खोज-खबर लेने, शोक-सभाओं में शिरकत करने, यहाँ तक कि अब वो असमय ही लोगों की मौत, आत्महत्या हो चाहे, हत्या, या भविष्य की बर्बरता से संकटग्रस्त होकर मृत्यु चाहे किसी भी रूप में हो, वो मृत्यु के न अश्मसान बनने देने को राजी है, न ही संक्रांतिकाल के समय में निहत्थे जीवन जीने वालों को एक निष्कर्ष तक ले जाने को आतुर है। मगर अभी पूरी तरह उससे उन्हें ऐतबार नहीं। मगर वो प्रयासरत हैं निरंतर और इस बात को गौर से देखते हुए महसूसते हैं कि— “मृत्यु का परिणाम

जीवन से इतना बड़ा अंतर दिखाता है कि हम भयभीत हो जाते हैं। “एक तो वो इस बिंदु पर आकर मृत्यु से भय का कारण जान लेते हैं और इसके साथ ही वो इसके उपाय की कोशिशों में लग जाते हैं ये कहते हुए —

“जिन्हें मृत्यु आकर ले जायेगी  
दबे पाँव आहट को सुनता हूँ  
और उसे शोर बनने नहीं देता हूँ  
हाँ मैं कुछ करता हूँ जिसका  
उपचार से कोई सम्बन्ध नहीं।”

.....

**हमें हमारे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हर वो मुमकिन कोशिश करनी चाहिए जो हमसे हो सके।**

**डॉ. अंबेडकर**

## ‘वक्तव्य’ एक संवाद और धूमिल ‘एक सही कविता पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है।’ - धूमिल

हिंदी साहित्य इतिहास के साठेतरी कविता आंदोलन के रूप में कवि धूमिल का नाम अग्रणी है। वे अपनी कविता को खरी जुबां से विशय या सवालों के लिए एक खरा रास्ता तय करने की कोशिश करते हैं। वह रास्ता साधारणतः साधारण जनता की उन दूरगामी बस्तियों और समस्याओं की ओर जाता है, जहाँ कवि अपनी कविता को सभी के लिए वक्तव्य के तौर पर प्रस्तुत करता है, और उसका वक्तव्य सीधे तौर से आम जनता से संवाद करते हुए नजर आता है। समस्याएं चाहे जितनी भी गहरी हो, कवि उसके पूर्णतः करीब जाकर निरीक्षण करता है और अपनी वक्तव्यी शैली में तीव्र से तीव्रतर रूप से उसे सवालों के घेरे में लाता है। कवि साधारण चीजों या वस्तुओं के माध्यम से महकमे, देश, समाज, राज्य, सभ्यता, संस्कृति के कुरुप चरित्रों को चरितार्थ करता है। उसके यहाँ शब्दों का एक विशाल भंडार है, जहाँ कवि तंत्र—मंत्र, शासन, प्रजातंत्र, संसद, राजनीति, हिंसा, प्रतिहिंसा, चालक आदि जैसे शब्दों के प्रयोग कर देश या समाज की यथार्थता को बयां करता है। कवि की भाषा की सम्प्रेषणीयता और प्रभावशीलता कहीं—न—कहीं सामान्य मनुष्य को एक गहरे चिंतन तक ले जाने को बाध्य करती हैं, और वहाँ मनुष्य स्वयं से संवाद करने के साथ—साथ सवाल करने के लिए वह आतुर हो जाता है। मनुष्य के जीवन कार्य—शैली की पहली शर्त रही है कि हम सवाल करें! सवाल समाज और देश को लोकतांत्रिक बनाता है, उसे अधिक प्रगतिशील बनाने में मदद करता है। जहाँ कविता सीधे अपना वक्तव्य का मार्ग मजबूत करने में सक्षम होती है।

डॉ. रमेश यादव  
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग  
महारानी काशीश्वरी कॉलेज, कोलकाता

धूमिल की प्रमुख काव्य संग्रहों में ‘संसद से सड़क तक’, ‘कल सुनना मुझे’, ‘सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र’, प्रमुख हैं, जिनमें कवि अपने वक्तव्यों को बहुत ही धारदार और जोरदार रूप से देश के समक्ष रखता है। अन्यायी या उत्पीड़क समाज के वे घोर विरोधी थे। अन्याय जहाँ भी हो धूमिल के लिए वह एक अपराध से कम नहीं है, और उस हर अपराध के प्रति वे डटकर विरोध या प्रतिरोध करते हैं। धूमिल गाँव में हों, बाजार में हों, अपने ऑफिस में हों, बनारस में अस्सी या गोदौलिया में हों— कहीं वे गलत होता देख नहीं सकते थे, अन्याय को बर्दाश्त न कर सकते थे। वे अन्यायी या उत्पीड़क सड़ उलझ जाते, जरुरत पड़ी तो हाथ भी लगा देते। गोष्ठियों में इसी तरह वे प्रतिद्वंद्वी पर टूट पड़ते। इससे हर जगह उनकी एक गुस्सैल और झगड़ालू आदमी की छवि बन गयी थी। लेकिन भीतर से वे बेहद संवेदनशील और मानवीय थे।<sup>11</sup> अगर उनकी कविताओं पर एक नजर डालें तो वे मुख्य हैं, कविता, अकाल—दर्शन, शहर का व्याकरण, दस्तक, किस्सा जनतंत्र, आज मैं लड़ रहा हूँ खेवली, मोचीराम, भाषा की रात, मुनासिब कार्बावाई, पटकथा। धूमिल की ये कविताएं एक नयी दृष्टि की पहचान कराती हैं, और गहरे विचार—सोच के साथ सार्थक अभिव्यक्ति भी करती हैं। चूंकि कवि के नजरिए में काव्य मनःस्थिति की वह उत्पत्ति है जहाँ कवि का सार्थक उद्देश्य या सरोकार पूर्ण होता हो। कवि को भली—भाँति पता है कि, “शब्दों के पीछे कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं और हत्या अब

लोगों की रुचि नहीं— ‘आदत बन चुकी है’ वह किसी गँवार आदमी की ऊब से पैदा हुई थी और एक पढ़े—लिखे आदमी के साथ शहर में चली गई।”<sup>2</sup>

धूमिल ‘अकाल दर्शन’ कविता में उस विचारधारा को अभिव्यक्त करते हैं, जो अबतक भूख की विचारधारा खत्म नहीं हुई। हर सवाल के बाद ‘भूख’ का सवाल ज्यों का त्यों आज भी बना हुआ है। उस अकाल के कारक को कवि जानना चाहता है। कवि का इरादा साफ है, ‘भूख कौन उपजाता है— “वह इरादा जो तरह देता है या वह घृणा जो आँखों पर पट्टी बाँध कर हमें घास की सट्टी में छोड़ आती है?”<sup>3</sup> यह सच है कि जब इरादा और घृणा भ्रष्ट हो जाये तो एक व्यक्ति कुछ करने में पूरी तरह से असमर्थ हो जाता है। धूमिल इस प्रश्न को बहुत ही चतुराई से व्यवस्था के कर्णधार से करते हैं। जब व्यवस्थापक भुखमरी का कारण बढ़ती जनसंख्या को बाढ़ का रूप देकर संकेत करता है, लेकिन कवि वहीं इसे ‘बरकत’ के तौर पर मानता है कि श्रमिक के घर में और कमाई बढ़ेगी। कवि लिखता है, मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा— “बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत हैं।” इससे वे भी सहमत हैं। जो हमारी हालत पर तरस खाकर, खाने के लिए रसद देते हैं। उनका कहना है कि बच्चे हमें बसंत बुनने में मदद देते हैं।<sup>4</sup> धूमिल ग्रामीण चेतना के कवि हैं, क्योंकि वे गाँव की दुर्दशा से पीड़ित हैं। कवि को विश्वास है कि गाँव के हालात तभी सुधरेंगे जब संघर्ष होगा। क्योंकि वह संघर्ष गाँव से ही षुरू होगा। शहर के लोग तो व्यवस्था के समक्ष नतमस्तक और पस्त दिखाई दे रहे हैं। कवि लिखता है, सचमुच मजबूरी है। “मगर जिंदा रहने के लिए पालतू होना जरूरी है।”<sup>5</sup> इसी प्रकार धूमिल की समकालीन कविताओं में ठोस और यथार्थ चरित्र की भूमि पर लिखी गई ‘मोर्चीराम’

कविता एक बेजोड़ कविता है। जिस कविता में कवि को ‘आदमी होने की तमीज’ के अभाव का पता चलता है, और आगे किस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ में भेद-प्रभेद विराट में कायम होते गये। इस भेदता की खाई इतनी गहरी है कि उसको पाठना मुश्किल तो है पर नामुमकिन नहीं। इसलिए कवि को मोर्ची की दृष्टि में एक समझाव दिखता है। जो प्रत्येक पैर के लिए “प्रत्येक आदमी उस जूते की माप से कर्तई बाहर नहीं है, ‘न कोई छोटा है। न कोई बड़ा है मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है, जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।”<sup>6</sup> चूंकि यह कवि धूमिल का वक्तव्य है जो कविताओं के जरिए प्रत्यक्ष संवाद लोगों से कर रहा है। मोर्चीराम के जीवन—अनुभव और भाषा से संवाद ने उसे साहस के लिए अभिव्यक्त प्रदान करता है। मेहनतकश और शोषित समाज के लिए धूमिल की कविताएं संबल हैं, अस्त्र हैं और लड़ने के लिए साहस और सामर्थ्य हैं। चूंकि यह सब अचानक नहीं होता है बल्कि जाति, धर्म, पेशे आदि के रूप में इस शोषण की पहचान हुई है। इसलिए कवि संघर्षरत रहे मानव—समाज को सही तर्क और जीवन का सही मतलब समझाने की कोशिश करता है। वह तर्क जिंदगी के प्रत्येक पहलू पर लागू है— शासन, तंत्र, शिक्षा, व्यवस्था, जनतंत्र, संसद और आदमी आदि सभी पर। आदमी जिंदा होने का सही तर्क भाषा और मौसम से जुड़ता है जहाँ आदमी की आदमियत की पहचान होती है। कवि लिखता है, “असल बात तो यह है कि जिंदा रहने के पीछे अगर सही तर्क नहीं है, तो रामनामी बेचकर या रंडियों की, दलाली करके रोजी कमाने में

कोई फर्क नहीं है और यही व जगह है जहाँ हर आदमी अपने पेशे से छूटकर भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है।<sup>7</sup>

कवि अपनी कविता के माध्यम से सन सत्तर के भाषा आंदोलन से जुड़ता है। 'भाषा की रात' में कवि जिस भाषा को प्रकाश या ज्ञान का अगुआ बनाकर देश की सही और जरुरी समस्या 'भूख' को सामने रखता है। इसलिए सरकार इस तरह की बेजा समस्या को उठाकर मूल समस्या से जनता का ध्यान भटकाती है। जिसका खामियाजा देश की जनता आजतक भुगत रही है। कवि लिखता है, 'पसीने का स्वाद चख लिया है बहस के लिए भूख की जगह भाषा को रख दिया है— उन्हें मालूम है कि भूख से भागा हुआ आदमी भाषा की ओर जायेगा।'<sup>8</sup> धूमिल अपनी विशिष्ट और बेबाक भाषा—शैली के द्वारा सप्रसंग बातों की तरफ हमारा ध्यान खींचते हैं। साम्प्रदायिक उन्माद, भ्रष्ट आर्थिक विषमता ऐसे कइयों सवाल हैं जिसको कवि निरंतर उठाता रहता है। उन बुद्धिजीवियों की भी खबर धूमिल लेते हैं जो अपने निजी स्वार्थ में रत हैं, और अप्रासंगिक मुद्दे में मस्त हैं। सरकार के बने पिछलगू ऐसे आदमियों की खबर धूमिल बहुत कड़वाहट से लेते हैं तथा न्याय के कार्य विवेकशीलता से लेने की बात करते हैं। क्योंकि आजकल कोतवाल और कोतवाली की नीयत ठीक नहीं चल रही है और हर हथकड़ी का नम्बर एक है, कवि लिखता है, 'यह न्याय के लिए।' क्योंकि जिसमें थोड़ा—सा भी विवेक है, वह जानता है कि आजकल घर कोतवाल की नीयत और हथकड़ी का नम्बर एक है।<sup>9</sup>

**निष्कर्षतः** हम कह सकते हैं कि धूमिल के लिए कविता, कविता या कला या मनोरंजन से हटकर एक आदमी का आदमी कद लिए

सार्थक व्यक्तव्य है, जो सीधे रूप से लोकतांत्रिक व्यवस्था में पल—बढ़कर असंतोष, अधैर्य बोध को सवाल के घेरे में लाती है। तथा पूरे दमखम से आदमी से संवाद करती हुई लोकतंत्र की चालाकियों को दुरुस्त करने का प्रयास करती है। सवाल राजनीतिक विसंगतियों का हो या आपसी सौहार्द का या आदमी की आदमियत की, खुले तौर पर धूमिल की कविताएं अंधकार पूर्ण वातावरण से लड़ती हैं, व्यवस्था और व्यवस्थापक के असली चेहरों को बेनकाब करती हैं, वह भी अपना पक्ष या वक्तव्य रखते हुए संवाद करके।

### सन्दर्भ :

1. प्रधान, अवधेश, सुदामा पांडेय धूमिल, साहित्य अकादेमी, संस्करण रु 2016, नयी दिल्ली, पृ. 24
2. धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, संस्करण—2015, नयी दिल्ली, पृ. 9
3. वही., पृ. 17
4. वही., पृ. 17
5. वही., पृ. 58
6. वही., पृ. 39
7. वही., पृ. 42
8. वही., पृ. 89
9. वही., पृ. 84



## परिवार एवं समाज से संघर्षरत 'अभागी स्त्री'

महादेवी वर्मा 'अतीत के चलचित्र' रेखाचित्र संग्रह नामक पुस्तक की अपनी बात में स्वयं स्वीकार करती है कि 'उद्देश्य केवल यही था कि जब समय अपनी तुलिका फेर कर इन अतीत चित्रों की चमक मिटा दे, तब इन संस्मरणों के घुंघले आलोक में उन्हें फिर पहचान सकूँ।'<sup>1</sup>

महादेवी का यह कथन संवेदनात्मक एवं भावनात्मक है, महादेवी इन दृष्टि से अछूती रही होंगी कि जब इन रेखाचित्रों की आलोचना की जाएगी तो यह रेखाचित्र मात्र स्मृति न होकर यह विमर्शों की पुष्पगूछ होंगी। आज हम विमर्शों की दुनिया में जीवन—यापन कर रहे हैं। समस्सामयिक संदर्भ में जीतने भी विमर्श साहित्य संसार में स्थापित हो चुके हैं, वे सारे के सारे विमर्श महादेवी के रेखाचित्रों में चिनगारी रूप में उपलब्ध हैं, चाहे वो स्त्री विमर्श हो या दलित विमर्श या फिर विकलांग विमर्श हो या यौवन कर्मी विमर्श, बालश्रम, का संदर्भ हो या श्रम के उचित मूल्य की माँग या फिर घरेलु हिंसा ये सभी संदर्भ बहुत ही यथार्थता एवं सजीवता के साथ चित्रित हैं।

हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा की स्थापना मूलतः एक कवयित्री के रूप में हुई है। परन्तु उनका गद्य संसार भी समसायिक संदर्भ से ओत—प्रोत हैं एवं समाज की ज्वलंत समस्या को नग्न यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। महादेवी वर्मा का साहित्य संसार में आगमन ऐसे समय में हुआ जब सम्पूर्ण भारत परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ी हुई थी एवं मुक्ति की मनोकामना लिए सम्पूर्ण जनमानस संघर्षरत थी। चाहे वो अंग्रेजी राज से आजादी हो या भारत की आधी जनसंख्या स्त्री मुक्ति का प्रश्न हो या दलित अस्तित्व एवं अस्मिता की समस्या या फिर सामाजिक परम्परा या संस्कार कहे

डॉ. राजू कुमार

हिन्दी विभाग

श्री अग्रसेन महाविद्यालय,  
डालखोला, उत्तर दिनादपुर

जाने वाले रुद्धियों से छुटकारा आदि विषयों से महादेवी की लेखनी सीधे—सीधे मुखातिब होती है। ऐसी ही एक ज्वलंत समस्या को महादेवी ने अपने रेखाचित्र 'अभागी स्त्री' में प्रस्तुत किया है। इस स्त्री का अपराध यही है कि इसने स्वेच्छा से प्रेम विवाह किया है। विवाह के दूसरे दिन से मायके से संबंध नहीं रहा और ससुराल वालों ने पति के रहते और न ही मृत्यु के पश्चात् ही उसे स्वीकार किया। इस प्रकार परिवार एवं समाज से संघर्षरत स्त्री जो मानवता, मानवीय संबंध, परम्परा, संस्कार, स्त्री होने का अपराध और अंततः जिसे हम समाज कहते हैं वह किस मोड़ पर उसे ले जाकर खड़ा करता है। इन्हीं सब प्रश्नों से लड़ता यह रेखाचित्र अपनी रचना धर्मिता में सफलता एवं प्रासंगिकता की गवाही देती है।

इस रेखाचित्र में महादेवी ने एक ऐसी अनाथ अभागी स्त्री की करुण कथा का चित्रांकन किया है जो एक रोग ग्रस्त पुरुष की पत्नी है। समाज से उपेक्षित, भाग्य से दण्डित और पिता घर से निर्वासित अभागी स्त्री अपने पति के रोग के उपचार के हेतु अर्थोपार्जन के लिये महादेवी के पास जाती है। 'मुझे कोई काम दीजिए' कथा को आगे बढ़ाते हुए महादेवी के शब्दों 'पति डेढ़ वर्ष से बीमार है दवा—दारू में सब कुछ स्वाह हो चुका है। गहने के नाम से उसकी उंगली में चार मासे भर सोने का एक छल्ला शेष है। पति का एक मात्र उपहार होने के कारण इसे बेचने का विचार ही उक्लांत कर देता है और बेचकर भी कैं दिन चलेगा, यदि कोई काम न मिल

सका तो वह स्वयं भूखी रह कर मरने से भी नहीं डरती पर और उसका गला भर आया। पलकों की कोर तक आये हुए आँसुओं को भी रोक लेने का उसे अभ्यास था। इसी से जिस वेग से उसका शरीर बेंत के समान काँप उठा था, उससे मात्र में कुछ अधिक संयम ने आँखों की सजल निस्तब्धता को पिघलने नहीं दिया।<sup>2</sup>

इस प्रकार के दृश्य कहानीकार यशोदा देवी की नयी बहु कहानी में भी द्रष्टव्य है। उन्होंने अपनी कहानीयों में कथा नायिकाओं का चरित्रोत्कर्ष प्रधान विशय के रूप में चित्रित किया है। लगभग सभी कहानीयों की नायिकाएँ अपने व्यवहार में आदर्श रूप लिये प्रस्तुत होती हैं। 'नई बहु' की नायिका दुर्गा कहती हैं 'नहीं स्वामी! स्त्री के शारीर की शोभा गहनों से नहीं, स्त्री की शोभा और सारे सुखपति के सुखी रहने में है। वे स्त्रियाँ महामुर्ख हैं, जो गहनों में ही अपने शरीर की शोभा समझती हैं। वे अवश्य नरकवासिनी होंगी जो पति के दुःख में दुःखी न होकर अपना सुख नाना प्रकार के सुखों में ही समझती हैं।'<sup>3</sup>

इस स्त्री का दोष इतना है कि प्रेम का स्वेच्छा से विवाह कर लिया है, इस रुद्धिग्रस्त, परम्परावादी समाज में प्रेम करना ही अपराध है और वह स्त्री तो विवाह कर चुकी थी। अतः उसे दण्ड मिलना अनिवार्य हो गया। महादेवी के शब्दों में 'एक हल्की सी कम्पन लिए हुए शब्दों ने मुझे चौंका—सा दिया। ससुराल वाले रुद्ध हैं— उसे घर ले जाने को राजी नहीं और पति को अकेले जाना स्वीकार नहीं विवाह के उपरान्त माँ से उसका कोई संबंध नहीं रहा। उससे रूपया लेने से मृत्यु अच्छी हैं। इतनी टीका के टीका के उपरान्त मैंने मूल तत्व का सूत्र पकड़ पाया। वह पतित कहीं जाने वाली माँ की पुत्री है और बिना समाज के प्रवेश—पत्र के ही साध्वी स्त्रियों के मंदिर में प्रवेश करना

चाहती थी। उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छू कर वह जिस स्त्री को सती कह देती हैं, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। जिसे समाज ने एक बाए कुलवधुओं की पंक्ति से बाहर खड़ा कर दिया, उसे जन्म—जन्मांतर तक अपनी सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर खड़ा रहने को ही जीवन का सबसे बड़ा वरदान समझना चाहिए।<sup>4</sup>

महादेवी ने उसके लिये काम ढूँढ़ा परंतु कुछ काम नहीं मिलने पर अंत में उन्होंने अपने पढ़ने—लिखने वाले कामों में से कुछ निरर्थक कार्य करवाने लगी पर वह स्त्री तो स्वाभिमानी थी। अतः यह क्रम जल्द ही खत्म हो गया। कुछ दिनों बाद पता चला उसके पति की मृत्यु हो यगी। कथा का शेष अंश महादेवी के शब्दों में 'उस अभागी स्त्री की इतनी एकान्त साधना भी उसके पति को न बचा सकी। अंतिम क्षणों में पुत्र का मुख देखने जो पिता आये थे, उन्होंने अनाहर से दुर्बल अनेक रातों से जगी हुई बधू की ओर भूलकर भी दृष्टिताप नहीं किया। कदाचित उनके मन में भी यही धारणा रही हो कि उसी अनाचारिणी के कारण उनके पुत्र को जीवन से हाथ धोना पड़ा है।' पड़ोसियों में से जब किसी ने आकर उसकी बेहोशी दूर की, तब सब उसके मृत पति को ले जा चुके थे। रात भर वह उसी प्रकार बैठी रही, परंतु सबेरे ससुर को जाने के लिए सामन ठीक करते देख उसकी चेतना लौटी। अंचल से आंखें पोंछ कर जब उसने किवाड़ की ओट से प्रश्न किया 'कै बजे चलना है' तो मानों ससुर—देवता पर गाज गिरी। प्रथम आघात सहकर जब उनमें बोलने की शक्ति लौटी, तब उन्होंने भी क्रूरतम प्रहार किया। कहा— 'जो लेकर अपने घर से निकली थी, वही लेकर अपनी माँ के पास लौट जाओ, नहीं तो तुम्हारी साथ हमें बुरी तरह पेश आना पड़ेगा। हमारे कुल में दाग ला कर भी क्या तुम्हें संतोष

नहीं हुआ? स्त्री ने क्रोध नहीं किया, मान—उपमान का विचार नहीं किया। जिस घर पर उसका न्ययोचित अधिकार था, उसी में पग भर भूमि की भीख माँगने के लिए आंचल फैला कर दीनता से कहा—‘घर में कई नौकर—चाकर हैं मेरे लिए दो मुट्ठी आठा भारी न होगा। मैं भी आपकी सेवा करती हुई पड़ी रहूँगी।’ किन्तु ससुर का उत्तर उज्जा को भी लज्जित कर देने वाला था।<sup>5</sup>

इस रेखाचित्र में महादेवी ने समाज के अनमेल विवाह के विशेष समस्या को उठाया है। भारतीय समाज के हिन्दू परिवार में प्रेम करना एक अपराध है और विवाह करना तो मृत्यु दण्ड से भी बड़ा दण्ड है। खेचा से उसका प्रायश्चित्त इस समाज के महिलाओं को करना पड़ता है। महादेवी ने इस रेखाचित्र में भारतीय समाज के उस मानसिकता को दर्शाती है जिसमें लोग झूठी शान—शौकत, मर्यादा और परम्परा के नाम पर प्रकृति के सबसे सुन्दर और कोमल जीव के साथ पशुता से पेश आते हैं। उसे दुर्ब्यवहार,

अपमान और प्रताड़ना का भोग नित्य दिन लगते हैं, इस तथ्य को दर्शाते हुए मादेवी ने इस समाज पर व्यंग्य किया है कि परम्परा का ढोग रचने वाले लोग तुम कितने क्रूर और निर्दयी हो।

### **संदर्भ :**

1. वर्मा, महादेवी, अतीत के चलचित्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. : 2004, पृ. 9
2. वर्मा, महादेवी, स्मृति की रेखाएं, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. : 2010, पृ. 71
3. देवी, यशोदा, सच्चा पति प्रेम (भूमिका), वनित हितैशी प्रेस प्रयाग, सं. : 1918, पृ. 8
4. वर्मा, महादेवी, स्मृति की रेखाएं, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. : 2010, पृ. 71
5. वर्मा, महादेवी, अतीत के चलचित्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. : 2004, पृ. 4

**लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि पैरोकार के लिए जो भी रचनाएँ भेजे वह यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) Font में अवश्य होनी चाहिए।**

**कृपया आप से आग्रह है कि पैरोकार (त्रैमासिक) पत्रिका का सदस्यता लेकर हमारे रचनात्मक कार्यों में सहयोग करें।**

**E-mail ID : pairokarpublication@gmail.com**

**m9903849713@gmail.com**

**— प्रबंध संपादक**

## ‘चन्द्रगुप्त’ नाटक में जयशंकर प्रसाद की नारी दृष्टि

आदिकाल में समाज में स्त्रियों के प्रति पूज्यभाव नहीं था। तत्कालीन समाज में स्वयंवर प्रथा थी, जो प्रायः युद्ध का कारण बन जाती थी। भक्तिकाल में नारी की स्थिति दयनीय थी, उन्हें दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता था। भक्तिकाल के संत साहित्य के अंतर्गत नारी को माया और ठगनि के रूप में देखा जाता था। संत कबीर कहते हैं— “नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग। कबीरा तिन की कौन गति, जो नित नारी संग।”

वहीं सूफी साहित्य के अंतर्गत सुफियों ने नारी के माध्यम से प्रेमसाधना की है। वे ईश्वर को नारी के रूप में देखते हैं। रीतिकाल विलासी शासकों और सामंतों का काल था। नारी मात्र भोग—विलास की वस्तु बन गयी थी। किसी की कन्या का अपहरण कर लेना उच्चवर्ग के लोगों के लिए सामान्य बात थी।

आधुनिककाल में लोगों के अंदर चेतना जागृत हुई, जिसमें ‘साकेत’, ‘कामायनी’ ‘चन्द्रगुप्त’ जैसे गद्य और पद्य विधाओं का विकास हुआ और इस काल का साहित्य नारी के प्रति गौरव की झाँकी प्रस्तुत करता है। भारतेन्दुकाल में नारी शिक्षा पर बल दिया गया। विधवा विवाह, सतीप्रथा आदि को काव्य का विषय बनाया गया। द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त ने नारी भावना को मार्मिकता से व्यक्त करते हुए कहा है— “अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आँचल में है दूध आँखों में पानी।”<sup>2</sup>

किन्तु वे नारी को नर की तुलना में गरिमा देते हुए नारी को नर से भी श्रेष्ठ मानते हुए कहते हैं—

“एक नहीं दो—दो मात्राएँ नर से भरी नारी।”

छायावाद में छायावादी कवियों ने नारी को उदात्त रूप प्रदान करते हुए उसे पुरुष की

### नीतू कुमारी

कॉलेज शिक्षिका, सरोजनीनायडू  
कॉलेज फॉर वीमेन्स, प. बंगाल

प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। नारी दया, ममता, करुणा जैसे गुणों से सम्पन्न है और श्रद्धा के पात्र है—

“नारी तुम केवल श्रद्धा हो  
विश्वास रजत नग पग तल में  
पीयूष स्त्रो तसीबहा करो  
जीवन के सुन्दर समतल में।”

प्रगतिवाद में प्रगतिवादी कवियों ने नारी के यथार्थ रूप का चित्रण किया है, जो रात—दिन पुरुष के साथ आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को झेलती है। निराला ने पत्थर तोड़ती हुई नारी का चित्रण किया है—

“वह तोड़ती पत्थर  
देखा मैंने उसे इलाहबाद के पथ परस”  
जयशंकर प्रसाद आधुनिक काल के छायावादी काव्यधारा के कवि हैं। हिंदी के प्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसाद ‘चन्द्रगुप्त’ (1931) हिंदी की सर्वाधिक लोक प्रिय और चर्चित ऐतिहासिक नाटक है। इतिहास का पुनर्लेखन करना कदापि प्रसाद का उद्देश्य नहीं रहा बल्कि उन्होंने चन्द्रगुप्त नाटक के आधार पर नारी चेतना, नारी की स्थिति को दिखाया है।

प्रसाद के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पहलू नारी है। प्रसाद ने नारी के प्रति सम्मान भाव व्यक्त किया है उसे पुरुष की प्रेरक शक्ति माना है। प्रसाद ने पहली बार नारी को उसके विराट व्यक्तित्व—प्रेयसी, जननी, देवी आदि के रूप में प्रतिष्ठित किया है। नारी के उदात्त सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई। रीतिकाल में जो नारी केवल विलास की वस्तु बन गयी थी, प्रसाद ने उसे

पूज्य मानकर उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त किया है। सुमित्रा नंदनपंत ने भी नारी के गौरव को पुनर्स्थापित किया और उसे देवी, माँ, सहचरी, प्राण कहकर सम्मानित किया।

प्रसाद ने नारी की खोयी हुई अस्मिता और उसके गौरव को स्थापित किया है उनकी नारियाँ कोमल और भावमयी ही नहीं हैं बल्कि वीर, साहसी, एवं एक निष्ठ हैं, उनमें शक्ति है, ऊर्जा है, आवेश है। उनकी नारियाँ पुरुष को आत्महीन कायरता से उबारती हैं। उनके यहाँ जाकर स्त्री-पुरुष संबंधों का समीकरण बदल जाता है।

भारतेन्दु ने हिन्दी नाटक को एवं नाट्यकला को जन्म दिया, प्रसाद ने उसे एक नई दिशा दी। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में यद्यपि पुरुषपात्रों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया गया है लेकिन सभी नारी पात्रों ने नाटक की कथावस्तु को विकसित करने में अपना-अपना योगदान दिया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अलका, कार्नेलिया, कल्याणी, मालविका और सुबासिनी पांच प्रमुख नारी पात्र हैं।

प्रसाद की नारियाँ भारतीय नारी आदर्श का दिव्य प्रतीक हैं। नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रसाद के हृदय की सारी कोमलता, कल्पना, भावना, कला प्रस्फुटित हुई है। प्रसाद का हृदय नारी के प्रति आस्थावान है और नाटक में सत्य-असत्य की संघर्ष को दिखा कर सत्य की विजय प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ में डॉ. दशरथ ओझा कहते हैं। "प्रसाद ने नारी जीवन को व्यापक दृष्टि से देखा है। स्त्री चरित्र निर्माण में 'त्रियाचरित्र' को ही प्रधानता न देकर उसके शील निर्देशन का प्रयास किया है।"

अलका के व्यक्तित्व में साहस, निर्भीकता और बुद्धिकौशल है, उसमें देश भक्ति की भावना भरी हुई है। वह अपने देश द्वोही भाई का साथ न देकर देश रक्षा के लिए घर-बार छोड़कर

स्वतंत्र रूप से निकल पड़ती है। विदेशी आक्रान्ताओं से देश की मर्यादा के रक्षा के लिए अलका देश की राजनीति में कूद पड़ती है। अलका के माध्यम से प्रसाद ने भारत के सपूतों को राष्ट्र के बलिवेदी पर न्योछावर हो जाने के लिए आवान किया है। अलका का जागरण गीत और उत्साहपूर्वक नेतृत्व वर्तमान समय में राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियों के भी सहायक होने और नेतृत्व करने की शक्ति की ओर संकेत करता है और भारतीय जनता के हृदय में राष्ट्रप्रेम और देश प्रेम की भावना को जागृत करती है— "हिमाद्रि तुंगश्रृंग से

प्रबुद्ध शुद्ध भारती  
स्वयं प्रभा समुज्जवला  
स्वतंत्रता पुकारती"

'चन्द्रगुप्त' में पात्र-योजना में नारी कई रूपों में अपना योगदान प्रस्तुत करती है, उसकी नायिकायें कल्याणी, मालविका, कर्नेलिया सभी पात्र प्रेमिकायें ही नहीं हैं बल्कि उसमें आत्म सम्मान की ज्योति है। जब पर्वतेश्वर कल्याणी से विवाह करने का प्रस्ताव अस्वीकार करता है तब उसके व्यक्तित्व, सम्मान और कुल के सम्मान की भावना एकदम उद्दीप्त हो जाती है तभी तो अपने पिता से कहती है— "पिता जी मैं पर्वतेश्वर के गर्व किया परीक्षा लूंगी। मैं वृशल कन्या हूँ उस क्षत्रिय को यह दिखला दूंगी कि राजकन्या कल्याणी किसी प्रसाद ने भारतीय अस्मिता की श्रेष्ठता के लिए कर्नेलिया से कई बार भारत भूमि का गुणगान कराया है। कार्नेलिया नारी के उस रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका बाह्य आवरण यूनान का है और अन्तःकरणपूर्ण भारतीय है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना उसके अंदर कूट-कूट कर भरी हुई है। प्रसाद अपने देश की सुंदरता, कला, सम्यता एवं संस्कृति पर मुग्ध हैं यहाँ के कण-कण में उन्हें प्रेम, मानवता दिखाई देती है जिसकी अभिव्यक्ति कर्नेलिया के

माध्यम से करते हैं। कर्नलिया कहती है— “यह सपनों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि— भारत भूमि क्या भुलाई जा सकती है ? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है। ”मानवता का पाठ जिसे पूरे विश्व ने भारत से सीखा है और इस भारत भूमि की विशेषता है कि जो भी यहाँ आता है यही का होकर रह जाता है। प्रसाद देश प्रेम की सुंदर भावना कर्नलिया के मुख से प्रकट करवाते हैं —

“अरुण यह मधुमय देश हमारा जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।”

‘चन्द्रगुप्त’ नाटक में सभी नारी पात्र उदात्त चरित्र सम्पन्न हैं। प्रसाद की नारी दृष्टिपूर्णतया भारतीय परंपरा के अनुसार है। उनकी नारी दृष्टि की खूबी यह है कि उन्होंने नारियों को आधुनिक संदर्भ के साथ जोड़ कर देखा है।

.....

**शिक्षा स्त्री और पुरुष दोनों  
के लिए समान रूप से  
आवश्यक है।**

**म. ज्योतिब फूले**

**जितना कठिन संघर्ष होगा  
जीत उतनी ही शानदार  
होगी।**

**स्वामी विवेकानन्द**

## ओमप्रकशन वाल्मीकि का व्यक्तित्व

महान भारत में समय—समय पर विदुषक, विदुषि, ऋषि, योद्धा, राजा महाराजा, देश भक्त, समाज सुधारक, लेखक और कवियों का जन्म होता रहा। वे अपने—अपने विषयानुसार कर्मों के जरिए देश के कोने—कोन में विभिन्न समाज, वर्ग को सही ज्ञान देकर सुधारने का हमेशा प्रयास किया गया है।

ठीक उसी तरह हिन्दी साहित्य में भी अनेक लेखकों एवं कवियों ने सदियों से हिन्दी जगत की सेवारत होते आये हैं। कबीर, प्रेमचंद, निराल, नार्गाजुन आदि। ऐसे समय में और कई लेखक, कवि, समाज सुधारक, जाति सुधारक भी इस भारत भूमि पर जन्म लिया, जो साहित्य को सहयोग से इस पावन भूमि की अन्य वर्गों को सुधाने के लिए मस्तिष्क में जागृति भावना से साहित्य लिखा, जैसे महात्मा फुले, हीरा डोम, अम्बेडकर तथा ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि से दलित हिन्दी साहित्य के माध्यम से समाज के दलित वर्ग में डिबरी जलाकर रोशनी दिखाना जो सिलसिला शुरू किया उसका ही आज ऐसा परिणाम दिखाई पड़ता है कि वर्तमान समय में भारत के कोने—कोने में वंचित समुदाय के बीच प्रकाश फैलती नजर आती है। जिससे इस वर्ग के लोगों में अस्मिता बनाने की भावना जागृत हुई। उसी दौरान एक लेखक, कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि लबालब रोसनाई से भरी लेखनी हाथ में लिए व्यवस्था के विरुद्ध सादे कागज पर लेखन जो सिलसिला आरंभ किया तो वह चिंगारी बनकर समाजिक व्यवथा रूपी अंधरे में जुगनू की तरह जीवन पर चमकते रहे हैं।

अभी—अभी भारत का आजाद हुए लगभग तीन वर्ष ही हुए थे। तब पूरे भारत में आबास के दिमाग में वर्चस्व का दबदवा का रंग चढ़ा हुआ जो लोगों के स्वभाव में भरपूर था। ऐसे समय

नारायण दास (शोधार्थी)

हिन्दी विभाग

विद्यासागर विश्वविद्यालय, प. बंगाल

में वंचितों के महान लेखक कवि ओजस्वी, अकाट्य, प्रहार करने वाले का जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जिला बरला गाँव में 30 जून 1950 को एक भंगी परिवार में जन्म हुआ। जिसका नाम ओमप्रकाश वाल्मीकि है। उस दलित वाल्मीकि का भरण—पोषण शिक्षा पाना इस दलदलरूपी समाज से मुश्किल था लेकिन किस तरह वह इसके अन्तिर्गत परिपूर्ण से होकर उभरा। इस पर गौर करने की अहम तथ्य है। इनके मकान के “चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुटन जाए। तंग गलियों में घूते सूअर, नंग—धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमरा के झगड़े, बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण—व्यवस्था को आदर्श—व्यवस्था कहने वालों को दो—चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।<sup>1</sup>

चूहड़ों के बस्ती के एक ऐसे परिवार में कवि लेखक वाल्मीकि का आगमन हुआ जिसके परिवार में पाँच भाई, एक बहन दो चाचा और एक ताऊ थे। घर में बच्चे, बूढ़े सभी किसी न किसी रूप से कार्यरत थे। फिर भी दो वक्त की रोटी बड़ी मुश्किल से जुट पाती थी। साफ—सफाई और मेहनत मजदूरी के कठीन कामों की भी मजदूरी इतनी कम मिलती थी कि उसमें पूरे परिवार का गुजर बसर करना कड़ी कठिनाइयों से जुझना पड़ता था। ऊपर से बेरोजगारी और गाली—गलौज, मार घाड़, प्रताड़ना अलग से समाज के वर्चस्व व्यक्तियों द्वारा होती थी। जाति लेकर छुआ—छूत का ऐसा माहौल कि चूहड़ों की छाया भी स्वर्णों को छू जाय तो पापा

लगता था। ऐसे में चूहड़ों चमारों के बच्चे को बढ़ने कौन देता है?

वाल्मीकि मोहल्ले में एक ईसाई आते थे जिनका नाम था सेवक राम मसीही। चूहड़ों के बच्चे को पढ़ना—लिखना सिखाते थे। सरकारी स्कूलों में तो कोई घुसने नहीं देता था। सेवक राम मसीही के पास सिर्फ वाल्मीकि को भेजा गया था। मास्टर सेवक राम मसीही खुले, मैदान में बिना कमरे, बिना टाट-चटाई वाले स्कूल में अक्षर ज्ञान देना शुरू किया था लेकिन एक दिन सेवक राम मसीही और उनके पिता में कुछ खटपट हो गई थी फिर वहां जाना उनका बंद हो गया। उनके पिता बेसिक प्राइमरी विद्यालय में गये थे जो कक्षा पाँच में मास्टर हलफूल सिंह के मेहरबानी से स्कूल में दाखिला मिल गया। इस प्रकार उनके जीवन में शिक्षा का प्रथम कदम का पेड़ जैसा रोपा गया जो झबरदार पेड़ का रूप में उभर कर दलित साहित्य में अपना विशालकाय रूप में स्थान प्राप्त किया।

वे जब स्कूल में अध्ययन करना शुरू किया तो वहां एक पुस्तकालय था, जिसमें पुस्तकों पर धूल जम रही थी। इस पुस्तकालय में पुस्तकों से परिचय पहली बार हुआ था। आठवीं कक्षा में पहुंचते पहुंचते शरतचन्द्र, प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ को पढ़ गये थे। शरतचंद्र के पात्रों ने उनके बालमन को बहुत गहरे तथ्य छुआ था और तब से पढ़ने का सिलसिला आरंभ हो गया था। उन दिनों वह कुछ अन्तर मुखी हो रहा था। ढिबरी की मंद रोशनी में मां को उपन्यास, कहानियां पढ़कर सुनाने लगे थे। प्रेमचंद की कहानियों में किसान, मजदूर, अस्पृश्य का जीवन एक नई दुनियां सामने लग रहा था। जिसे वे करीब से महसूस करने का कोशिश करता रहा। यहीं से शुरू हो गये उनके जीवन का साहित्य संसार। अनपढ़, अछूत परिवार में जन्म इस बेटे ने अपनी अनपढ़ मां को आल्हा (ऊदल), रामायण,

महाभारत से लेकर सूरसागर, प्रेमसागर, सुखसागर और प्रेमचंद की दलित संवेदीत कहानियां, तोता मैना के किस्से पढ़ कर सुनाया करते थे। होनहार विरवान के होत चीकने पात वाला यह कहावत वाल्मीकि के लिए सत्यप्रतिशत प्रतीत होती है।

ओमप्रकाशन वाल्मीकि का व्यक्तित्व बहुत मुखर प्रतिभा संम्पन्न कहा जाता है। सर्वहारा का बच्चा अत्यधिक परिश्रमी होता है। ऐसे में वाल्मीकि अछूत रहने वालों में से कहां। ओमप्रकाश वाल्मीकि एक अधिकाधिक परिश्रमीकि, सशक्त, कर्मठ, जूङ्गारू और संघर्षशील थे। उनमें यही उन्माद बचपन से अंत का संघर्ष जारी रखने में भरपूर प्रयत्नशील रहे। प्रत्येक क्षेत्र में संघर्षरत जीवन व्यतीत किये। कहावत है कि जो जिद्दी होता है वह विकास अवश्य करता है। वह अपनी बात पर सदैव अडिग रहते थे और जो बात उनको नहीं जँचती उसके लिए किसी से भी टकरा जाते थे। उनके भीतर लोक जीवन की कुपमंडूकता का विरोध है। साहित्यक सेमिनारों, संगोष्ठियों में वह प्रायः अपने बात इनती दृढ़ता और बेबाकी से रखते थे कि बहुत से लोग बौखला जाया करते थे। किंतु वाल्मीकि जी ने किसी की बौखलाहट की कभी परवाह नहीं की। वह निरंतर अपनी राह पर चलते रहे। दृढ़ता और प्रतिबद्धता ही उनकी पहचान थी। कवि, कथाकार, आलोचक, नाटककार, निर्देश, अभिनेता, एकिटबिस्ट, क्या नहीं थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने आप में बहुत कुछ थे। वह ओजस्वी वक्ता, प्रखर चिंतक और दलित साहित्य के श्रेष्ठ लेखक थे। एक तरह से कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी दलित साहित्य के आधार स्तंभ है। उनके लेखनी से हिन्दी दलित साहित्य को एक मजबूत आधार और सशक्त पहचान मिली। ओमप्रकाशन वाल्मीकि दलित साहित्य का आंदोलन को

नजदिक करता था। अपने सशक्त लेखन से वह दलित साहित्य का 'आइकॉन' या पर्याय बने गये थे। जय प्रकाश कर्दम के अनुसार— "ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी बीमारी को जानते थे और उनकी गम्भीरता से भी भली-भांति अवगत थे, किन्तु सदैव हंसते—मुस्कराते रहने वाले उनके चेहरे पर उस समय भी मुस्कराहट थी। अपनी बीमारी से बेपरवाह से वह सब मिलने वालों से हंस कर बाते करते उनके चेहरे पर अंश मात्र भी दुख या चिंता का कोई भाव दिखाई नहीं देता था।"

वाल्मीकि एक ऐसे सामाजिक व्यवस्था में सांस ली है जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्ति में स्थान नहीं पा सके अपनी सामाजिक व्यथा कथा को शब्द बद्ध करने का विचार काफी समय से उनके मन में था लेकिन प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिली। उसने लिखना शुरू किया तो हर बार लिखते गये। शायद यहीं वह समय था जब उनके भीतर एक रचनाकार रूपी हृदय अंकुरित हो रहा था। उस समय गांव से देहरादुन और देहरादुन से जबलपुर, जबलपुर से अम्बरनाथ और वहां से चन्द्रपुर फिर वापिस जबलपुर यानी चालीस वर्षों की यात्रा की। इन अनुभव की गम्भीरता के साथ ऐसे अनेक मित्र उनके बन गये थे। जो जीवन के सच्चाई से रु—ब—रु कराया। इसी वैचारिक प्रतिबद्धता कि साथ उन्होंने जीना सिखा। जबलपुर में प्रशिक्षण के दौरान छात्रावास में रहते हुए उनके लिए सबसे बड़ा और जरूरी लक्ष्य था जीविका के साधन जुटाना ताकि घोर गरीबी और बिपन्नता से छुटकारा मिल सके। लेकिन वहीं छात्रावास में मित्रों का एक ऐसा ग्रुप था जिनके साथ जुड़ कर साहित्य, कला, रंगमंच से नाता जुड़ता चला गया। वहां उनकों दलित आंदोलन, दलित साहित्य को करीब से देखना का अवसर मिला।

वहीं से रहते हुए उन्होंने जोरदार लेखन की शुरूआत की लेकिन छपने के लिए एक लंम्बा सघर्ष करना पड़ा। जो उनके लिए काफी निराशापूर्ण था। फिर भी देश भर में फैली छोटी-छोटी पत्रिकाओं, दलित पत्रिकाओं के लिए उनका एक जाना पहचाना नाम बन चुका था। और हिन्दी का स्थापित पत्रिकाओं का रवैया उनके प्रति बेहद निराशापूर्ण आशाभरी थी लेकिन उन्होंने अपना प्रयास लगातार जारी रखा। अंततः ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने लेखन में सर्वोत्तम सफलता की सीढ़ियों पर पहुंच गये।

### संदर्भ :

1.ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, पहला संस्करण—8वीं आवृत्ति, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लि. 7 / 31अंसारी मार्ग दरियांगंज, नई दिल्ली—110002, पृ. 11



**जातिगत और लिंग के आधार पर किसी के साथ भेदभाव करना महापाप है।**

**म. ज्योतिब फूले**

## भूमंडलीकरण, कोरोना और साहित्य

कोरोना काल के अविश्वसनीय दौर में साहित्य सृजन एवं पठन—पाठन की गतिशीलता में कभी नहीं आई। कोरोना काल में साहित्य पर बात करने से पहले यह सार्थक लगता है कि सर्वप्रथम ‘भूमंडलीकरण’ शब्द को स्पष्ट कर लिया जाय। “भूमंडलीकरण” वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को संसार की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना है। वस्तुओं, सेवाओं, व्यक्तियों और सूचनाओं का राष्ट्रीय सीमाओं के आर—पार स्वतंत्र रूप से संचरण ही वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण कहलाता है।<sup>1</sup> इसका आरम्भ 20वीं सदी के अंतिम दशक यानी 1990 के बाद अपनाई गयी नई आर्थिक नीति से होता है। इसमें सूचना के प्रचार—प्रसार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सूचना क्रांति के सफल होने से वैश्विक गाँव की परिकल्पना वैश्वीकरण के रूप में तीव्र गति से पनप रही है। वैश्वीकरण को बढ़ावा देने वाले अनेक कारक हैं जैसे— अंतर्राष्ट्रीयकरण, विश्व व्यापार का खुलना, उन्नत संचार साधनों का विकास, वित्तीय बाजारों का अंतर्राष्ट्रीयकरण, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का महत्त्व बढ़ना, जनसंख्या का देशांतर गमन व्यक्तियों, वस्तुओं, पूँजी आंकड़ों व विचारों की गतिशीलता का बढ़ना। संक्षेप में, एक देश का अनेक देशों के साथ विविध रूप में संबंध। यह सम्बन्ध मुख्य रूप से सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक रहा है। पुष्पपाल सिंह इस संदर्भ में कहते हैं— “वस्तुतः भूमंडलीकरण मूलतः एक आर्थिक नियमन की व्यवस्था के रूप में अस्तित्व में आया किन्तु इसके बाजारवादी पक्ष ने इसे सांस्कृतिक रूपान्तरण की प्रक्रिया में डाल दिया। किन्तु ऐसा नहीं है कि ये दोनों पृथक—पृथक संभाग हैं, ये एक दूसरे से अंतर्ग्रथित हैं। उत्पादों के लिए बाजार की तलाश और उसके लिए विज्ञापन के मायावी जगत द्वारा टी.वी. के पर्दे के उपयोग ने समस्त विकासशील दशों की संस्कृति को अमेरिकी संस्कृति में ढाल देने की सतत प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी।<sup>2</sup> वर्तमान में ‘भूमंडलीकरण’ का पद मुख्यतः आर्थिक सम्बन्ध के रूप समझा जाता है जहाँ एक विकसित पूँजी वाला देश अविकसित एवं विकासशील

**परमजीत कुमार पंडित**

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

सेंट पॉल्स कैथेड्रल मिशन कॉलेज, कोलकाता

देशों में अपना उत्पाद बढ़ा—चढ़ाकर पेश करता है और उत्पाद—बाजार का निर्माण करता है। सामाजिक—सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह महत्त्वपूर्ण है कि बहुराष्ट्रीय सूचनाओं का जाल निर्मित हो। इन सूचनाओं के तंत्रजाल से यह सुविधा हुई है कि व्यक्ति और समाज अपडेटेड हो गये हैं, हो रहे हैं। दूसरे देशों में आवागमन अधिक कठिन नहीं रह गया है। बाहरी देश में भारत के विद्यार्थी पढ़ने जाते हैं और अन्यान्य कई देशों में भारतीय रोजगार भी कर रहे हैं और नागरिकता भी प्राप्त कर रहे हैं।

वर्तमान समय में कोरोना के प्रसार में भूमंडलीकरण का महत्त्व बढ़ गया है। “कोरोना के कहर ने दुनिया में एक नए तरह के भूमंडलीकरण का मंजर पैदा किया है। यह भूमंडलीकरण है लॉकडाउन का! ब्रिटेन के अखबार गार्डियन के अनुसार, दुनिया की 20 प्रतिशत आबादी लॉकडाउन है, दुनिया में प्रति पाँच व्यक्तियों में एक व्यक्ति लॉकडाउन में है।”<sup>3</sup> भारत देश के माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 24 मार्च 2020 को रात 08 बजे 21 दिन के लॉकडाउन की घोषणा कर दी थी। जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। अगले 21 दिन भारत के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक रूप से काफी चुनौतीपूर्ण होने वाले थे। यहाँ प्रति व्यक्ति आय विश्व के दूसरे देशों के मामले में बहुत कम है। इस देश में सामान्य दिनों में दुनिया के कुपोषितों की सबसे बड़ी आबादी है, भूखे पेट और आधे पेट सोने वालों की संख्या भी करोड़ों में है। लिहाजा ये अंदाजा लगाया जा सकता है कि मध्य—निम्न वर्ग को आने वाले 21 दिनों तक कितनी समस्याओं से लड़ना था। इसके बाद भी लगातार लॉकडाउन लगते रहे। इस लॉकडाउन में सामाजिक संगति का नामो—निशान नहीं था। सांस्कृतिक—धार्मिक अनुष्ठान मात्र घर तक में सिमट गया था। राजनीतिक रूप से सरकार के फैसले पर काफी

उठापटक हो रहे थे। प्रशासन मुस्तैदी से कोरोना नियमों के पालन करने व करवाने हेतु तत्पर हुए।

कोरोना का प्रसार वैश्विक रूप में हुआ। कोरोना वायरस एक जीवन धातक विशाणु है जो सार्व प्रजाति से सम्बन्ध रखता है। जनमान्य है कि चीन से इस वायरस का प्रसार आरम्भ हुआ। इस वायरस के प्रसार के सम्बन्ध में कहा गया कि बुहान के मांस बाजार से फैला, चमगादड़ में रोग की वजह से फैला आदि। ऐसी भी बातें सामने आई कि इस वायरस का निर्माण प्रयोगशाला में हुआ। अमेरिकी रिपोर्ट में यह दावा किया गया कि लैब में 12 सितम्बर, 2019 के पहले ही वायरस लीक होने के सबूत मौजूद है। अबाधित संपर्क के कारण विश्व के 221 देश सामाजिक और आर्थिक रूप से प्रभावित हुए। अचानक उत्पाद के सभी कार्य-कलाप बंद होने से इन देशों को अधिमात्र में आर्थिक नुकसान झेलना पड़ा। अविकसित और अर्द्धविकसित राष्ट्रों को ये नुकसान भरपाई करने में न जाने कितने वर्ष लगेंगे। भारत के सन्दर्भ में ये माना गया कि कोरोना के कारण आर्थिक नुकसान से विकास की प्रक्रिया 10–15 वर्ष पीछे चले गए हैं। सरकार ने जनता को राहत देने के लिए कई कदम उठाये गए, कई नए नियम लागू किये और इस विषम परिस्थिति में एक-दूसरे की सहायता करने की भी अपील की।

मनुष्य जिजीविषा का धनी है। वह हताश होता है, निराश होता है, टूटता है, बिखरता है पर इन सबसे वह सीख लेता है और पुनः नवीन उर्जा के साथ उठ खड़ा होता है। 2020–21 में जब कोरोना ने तांडव मचाया तब मनुष्य मजबूती से खड़ा रहा। भौतिक रूप में कोरोना काल में साहित्यिक गतिविधियाँ ठप हो चुकी थीं। सभी पत्र-पत्रिकाएँ लगभग बंद पड़ी थीं, प्रकाशन कार्य बंद हो चुका था, प्रिंटिंग व्यवसाय दम तोड़ रहा था, दैनिक समाचार पत्रों के बाजार नष्ट हो गए थे, लोगों तक कम संख्या में पहुँच रही थी। ऐसे समय में साहित्य ने भूमंडलीकरण की अवधारणा को व्यापक रूप से सफल बनाया है, विस्तृत किया है। भूमंडलीकरण की महत्वपूर्ण देन सूचना क्रांति, मल्टीमीडिया आदि साहित्यिक गतिविधियों के लिए जीवनदायिनी साबित हुई। साहित्यिक अभिव्यक्ति के नए-नए माध्यम

सामने आये। साहित्य में भी नवीन अंकुर प्रस्फुटित हुए।

प्रिंट मीडिया के कम बंद पड़ने से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अधिक सक्रिय हो उठा। घरों में कैद रहने के बावजूद भी फेसबुक, वाट्सएप आदि सोशल मीडिया के माध्यम से एक-दूसरे की हिम्मत बनने का काम करते रहे, दूसरे को कठिन परिस्थिति में भी सकारात्मक बने रहने के लिए उर्जा-उत्साह देते रहे, सहयोगी बनने का प्रयास करते रहे। फेसबुक पर कविताओं और लघुकथाओं के साथ ही प्रेरक प्रसंग के माध्यम से लोगों ने जमकर अपने दुःख-सुख व्यक्त किए, समाजीकरण किया। ऐसे समय में सभा, समारोह, संगोष्ठी आदि साहित्यिक गतिविधियों पर रोक लगी हुई थी, स्ट्रीमयार्ड की सहायता से लाइव प्रोग्राम का सिलसिला चल पड़ा। फेसबुक लाइव, गूगल मीट, जूम, आदि के माध्यम से देश-विदेश में लाइव कार्यक्रम होने लगे। साहित्यिक अभिरुचि के अनुसार सुधीजन, साहित्य प्रेमी जुड़ते रहे और अपनी अभिव्यक्ति स्वतंत्र रूप में लाइव होकर रखने लगे। शिक्षण संस्थान और साहित्यिक संस्थाएँ ऑनलाइन कार्यक्रम आयोजित करने लगी। काव्य-गोष्ठी, कथापाठ, महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श, जन्म-जयंती, पुस्तक समीक्षाएँ आदि बहुसंख्य कार्यक्रम से साहित्य में रुचि रखने वाले अपना ज्ञानवर्द्धन करते रहे। साहित्य प्रेमी एक दिन में एकाधिक कार्यक्रम में शिरकत करने लगे। 2021 में फणीश्वरनाथ रेणु का जन्मशताब्दी वर्ष कई संस्थाओं ने आयोजित किये जिसमें साहित्य-प्रेमी विविध गुणात्मक विचारों से समृद्ध हुए। विडियो टॉक, यूट्यूब, फेसबुक साहित्यमय होने लगे। सोशल मीडिया पर पहले यह कम मात्रा में उपलब्ध था, किन्तु लॉकडाउन के कारण साहित्य के लिए सोशल मीडिया के महत्व और उपयोग में कई गुना अभिवृद्धि हुई। लॉकडाउन में साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रसार रुका नहीं, वरन् मल्टीमीडिया के कारण साहित्यिक क्षेत्र का प्रसार विस्तृत होता गया। जिन पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के हम नाम भी नहीं जानते थे वे अब ई-संस्करण के रूप में आसानी से उपलब्ध होने लगे हैं। वागर्थ, नया ज्ञानोदय, हंस, कथाक्रम, कंचनजंघा, मुकांचल, पुस्तक-वार्ता, मधुमती आदि

और भी कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं ने ई-संस्करण प्रस्तुत कर पाठकों के लिए सुलभ बनाया है। बदलते परिवेश में प्रकाशकों एवं संपादकों ने वक्त की नजाकत को समझते हुए ई-संस्करण के स्वागत योग्य फैसले को सही ठहराया है। 'नाटनल' पुस्तक एवं पत्रिकाओं के ई-संस्करण को उपलब्ध कराने वाला प्लेटफार्म है। यह प्लेटफार्म शिक्षक, विद्यार्थी, शोधार्थी एवं अन्य पाठक वर्ग के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। कहा जा सकता है कि ज्ञान-विस्तार के लिए यह प्लेटफार्म अद्वितीय है। 'गृगल प्ले स्टोर' पर पुस्तकें डाउनलोड की जा सकती हैं। 'स्टोरी टेल' प्लेटफार्म पर न केवल रचनाओं को पढ़ा जा सकता है, वरन् रचनाओं को सुना भी जा सकता है। 'कूकू एफएम' भी दृष्टिहीन पाठकों एवं सुधियों के लिए अन्यतम है, विशेष महत्व का है। किसी भी काम को करते हुए ब्लूटूथ, इयरफोन के माध्यम से विविध रचनाओं से रुबरु हुआ जा सकता है। पुस्तकनामा, साहित्यकुंज, जानकीपुल, बिंज, समालोचन आदि प्रतिष्ठित संस्थाओं ने समकालीन नये तथा उभरते रचनाकारों से विषम परिस्थितियों में भी परिचय कराता रहा है। साहित्य की यह एक बड़ी व महत्वपूर्ण उपलब्धि है कि पाठक वर्ग अपने रचनाकारों से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से जुड़ते रहे हैं।

कोरोनाकाल सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध हुआ है। कई साहित्यकार ने अपनी जिन्दगी गँवाई, अन्यान्य अनेक व्यक्ति कोरोना के काल के गाल में समा गए। लोग हताश-निराश अवसाद से ग्रस्त हुए किन्तु साहित्य रस द्वारा पुनः इस अवसाद-ग्रस्त जीवन से निकलकर सामान्य जीवन के दौर में आ गए हैं। इसी बीच लोगों ने कोरोनाकाल में अपने अवसाद को, दुःख की कारा को तोड़ने के लिए, छोड़ने के लिए, दूर करने के लिए कलम का सहारा लिया। इलेक्ट्रॉनिक कलम ने कई पाठकों को अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र मंच व माध्यम प्रदान किया। अध्ययन-अध्यापन, पढ़ना-लिखना थम गया था। मोबाइल और इन्टरनेट के माध्यम से लोगों ने आपस में जुड़कर मन हल्का किया। कोरोना महामारी ने सबसे अधिक प्रभावित किया है निम्न और मध्य वर्ग को, जिसमें किसान-मजदूर, दिहाड़ी मजदूर, घूम-घाम कर

रेहड़ी लगाने वाले, डेले पर जरुरी सामान बेचने वाले, फूटपाथ पर दूकान लगाने वाले और इसमें अधिकतर वे लोग होते थे जो दैनिक रूप से कुआँ खोदते एवं पानी पीते थे। प्रवासी मजदूरों की भी संख्या कम नहीं रही। इन सबको अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक साधन नहीं, मकान का किराया देने के लिए पैसे नहीं, बचत पूंजी गुल्लक भी खाली हो गए। जब लॉकडाउन में ढील दी गई तब ये प्रवासी रोजी-रोटी कमाने गए मजदूर अपने गाँव की ओर बिना किसी यातायात साधन-सुविधा के पैदल, साइकिल आदि के साथ चल पड़े। ऐसी विकट स्थिति आज तक देखी न गयी थी। राज्य के बोर्डरों को सील कर दिया गया था, परिणामस्वरूप या तो उन्हें वहीं से लौटा दिया गया या वे लोग वहीं डेरा डालकर बॉर्डर खुलने का इंतजार करने लगे। ऐसे समय सरकार भी उन लोगों को समुचित रूप से भोजन मुहैया नहीं करवा पा रही थी। प्रवासी मजदूर भूख से लड़ रहे थे और सरकार खाद्यान समस्या से जूझ रही थी। बाद में सरकार और समाजसेवी संस्थाओं के वश में जितना था उन्होंने सहायता करने का भरसक प्रयास किया। साहित्य ने इन सबकी अभियक्ति करने का प्रयास किया है। उनके दुःख-दर्द को कवियों ने किस प्रकार वाणी दी है। दो-एक उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है। कवि आत्मा रंजन अपनी कविता 'महाविपद में उनका लौटना' में लिखते हैं— "कितनों की ही रोजी रोटी/ उखड़ गयीं आशा और विश्वास की साँसें/ दुश्चिंताओं और घोर नैराश्य के बीच/ विकल्पहीनता में लौट चले हैं वे बेबसी के अनंत काफिले कहीं बहुत दूर छूट चुके/ अपने गाँव देहात की ओर।"<sup>4</sup> इन पंक्तियों में एक पूरा दृश्य उभर कर आता है कि वे कितने चिंतित और नैराश्य से भरे हैं, उनके भीतर आशा और विश्वास दम तोड़ रही है। बेबसी में देहात की ओर निकल पड़े हैं अपनी समस्याओं का निदान ढूँढ़ने। इसी प्रकार का चित्र रश्मि भारद्वाज की कविता 'दूसरी दुनिया के लोग' में दिखलाई पड़ती है— "वे जिन्होंने थाम रखी थीं पृथ्वी/ पैदल ही लौट रहे हैं अपने घरों की ओर अपने झोले में सहेजे सदियों की भूख, / उनके पैरों में दर्ज है एक निरंतर यात्रा/ उनकी फटी चप्पलों

से रिसते रक्त के साथ/ वह बहती जा रही है,/ फिर भी वे चले जा रहे हैं शताब्दियों से/ थामे अपने बच्चों की उँगलियाँ/ पृथ्वी के इस छोर से उस छोर तक/ एक सुरक्षित ठौर की तलाष में/ इनकी स्मृतियों में दर्ज हैं सिर्फ भूख की आवाजें/ और वर्तमान तलवों पर लिखा हुआ है/ भविष्य के नाम पर इनके पास है सिर्फ/ कन्धों पर टैंगा एक बैग।”<sup>5</sup>

संसार का एक ऐसा वर्ग जो केवल पृथ्वी का चक्कर लगा रहा है अपने झोले में अपनी भूख को सहेजे कि कहीं तो होगा इसका अंत। सर्वहारा वर्ग के जीवन में समस्याएँ अनेक हैं, अनेक जटिलताएँ हैं और इसी बीच उनकी जिजीविषा भी है जिसके कारण वे अथक परिश्रम करते हैं, रास्ता नापते हैं, खुद ही नहीं अपने पूरे परिवार के साथ। उनका कोई सुरक्षित ठिकाना नहीं है। उनकी स्मृतियों में भी केवल भूख ही है जिससे आजतक पार नहीं पाये हैं। सुप्रसिद्ध कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव कोरोनाकाल के अपने अनुभवों को ‘अथ कोरोना कथा : कोई सीधी रेखा नहीं है जीवन’ नामक कविता में अभिव्यक्ति करते हैं। उनके अनुभूति में पके हुए शब्द इस प्रकार हैं—“किसी—किसी क्षण टूटता है जिन्दगी में भरोसा/ लड़खड़ाने लगता है मन/ कि तुम आ जाती हो सामने/ इन सबको परे धकेलते हुए।”<sup>6</sup>

कोरोनाकाल में जब कवि के जीवन में भरोसा टूटने लगता है, साँसें उखड़ने लगती है तब कवि को अपनी अर्द्धांगिनी सामने नजर आती है सबको (नकारात्मक भावों को) दूर करते हुए। कवि का भरोसा लौट आता है, साँसें जुड़ने लगती है। कवि के भीतर जिजीविषा का जीवद्रव्य बचा रहता है। इसके अतिरिक्त अशोक वाजपेयी, राजेश जोशी, ज्ञानेंद्रपति, मदन कश्यप, लीलाधार मंडलोई, बोधिसत्त्व, संजय कुन्दन, अनामिका अनु, अनामिका, श्रीप्रकाश शुक्ल, नीलेश रघुवंशी, निशांत, मनीषा झा, नरेंद्र पुंडरिक, महेश पुनेठा, डॉ. डी. पी. बरनवाल, पंकज भूषण पाठक ‘प्रियम’, शिवप्रकाश दास आदि कवियों ने भी कोरोनाकाल के यथार्थ को अपनी कविताओं में चित्रित किया। आलोचक राजेंद्र मिश्र की ‘लॉकडाउन’ और सुप्रसिद्ध साहित्यकार नीरजा माधव की ‘कोरोना’ उपन्यास भी प्रकाश में आये।

**निष्कर्षतः** कहा जा सकता है कि कोरोना काल का अनुभव सभी के लिए अच्छा नहीं रहा।

ऐसी परिस्थितियाँ कभी नहीं आई थी कि पूरी दुनिया इससे प्रभावित हो। सब जगह, सब देश की अलग—अलग समस्याएँ थी, उसके निदान की भी सभी देशों ने मिलकर उपाय किये। इस संदर्भ में पूरे विश्व में बहुत—कुछ रचा भी गया। भारत के संदर्भ में, साहित्य की अपूरणीय क्षति भी हुई, कई साहित्यकारों को खोया, लेकिन यह धनात्मक हुआ कि कई नवांकुर ने कलम लेकर लिखने का साहस भी दिखाया। साहित्यकारों ने बेशक इस बीच बहुत—कुछ सृजन किया, कर रहे हैं और करते रहेंगे जिससे भावी पीढ़ी को कुछ नया सीखने को मिलेगा और अंधकार के बीच उजाला का परचम लहरायेंगे। भूमंडलीकरण के इस दौर में साहित्य ने निश्चित ही अपनी पहुँच विस्तृत की है। इस काल के दुःख—दर्द वैयक्तिक न रहकर सार्वजनिक हो गए और इसमें संचार माध्यमों की महती भूमिका रही। इस समय मनुष्य के केंद्र में एक तरफ भूख, बेरोजगारी, बिछड़ाव, अलगाव, शोक, कुंठा, तनाव, अंधविश्वास आदि रहे तो दूसरी तरफ जिजीविषा, एकता, मानव मूल्य की श्रेष्ठता, परोपकार की भावना भी देखी गयी। वस्तुतः मनुष्य ने कर्मशीलता का परिचय दिया और वे अपनी जड़ों से जुड़कर ही किसी भी महामारी से पार पा सकते हैं।

### संदर्भ सूची :

1. [www.scotbuzz.org/2018/05/bhoomandalikaran.html](http://www.scotbuzz.org/2018/05/bhoomandalikaran.html)
2. सिंह, पुष्पलाल, भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण—2012, पृष्ठ संख्या— 17–18
3. [www.nukta-e-najar.com/2020/03/corona/lockdown/globalisation/lesson/blog/post.html](http://www.nukta-e-najar.com/2020/03/corona/lockdown/globalisation/lesson/blog/post.html)
4. होता, अरुण, संपादक, तिमिर में ज्योति जैसे, सेतु प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण—2021, पृष्ठ संख्या—197
5. होता, अरुण, संपादक, तिमिर में ज्योति जैसे, सेतु प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण—2021, पृष्ठ संख्या—208
6. होता, अरुण, संपादक, तिमिर में ज्योति जैसे, सेतु प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण—2021, पृष्ठ संख्या—115

## कविता हिंदी का हिंदी दिवस

कहा किसी कविवर ने  
निज भाषा का उन्नति  
सब भाषा का मूल  
हाँ मैं हिंदी भाषी हूँ  
और हिंदी ही मेरा मूल  
हिंदी की रही छात्रा  
हिंदी ही मेरी पहचान  
मेरी अभिमान।

पर लगता है कुछ सभ्य बने लोग  
हिंदी से बच रहे हैं भाग रहे हैं  
हिंदी को वे बेकार समझते हैं  
हिंदी वालों को लाचार  
हिंदी बोलने पर गंवार समझते हैं।

क्या बताऊँ कैसे किससे  
मुंह छुपाना पड़ता है।  
हिंदी शब्दों का अर्थ मुझे जब  
अंग्रेजी में बताना पड़ता है।

सचमुच मेरे देश की यह  
सबसे बड़ी विसंगति है  
हिंदी दिवस के एक दिन में  
सिमट कर रह गयी है हिंदी है।

— डॉ. तबस्सुम जहाँ

## सिसकती हुई आँखें

छुप के बैठे है यूँ  
तन्हाईयों के साये में,  
कही देख न ले कोई,  
इन भीगी हुई आँखो को।

हर रोज ढूँढ़ा करती हूँ  
अपने घर का एक कोना,  
कही सुन न ले कोई,  
इन सिसकती हुई आहों को।

हर रोज ही मरते हैं,  
हर रोज ही जीते हैं,  
कही देख न ले कोई,  
इन टूटती हुई साँसो को।

हूँ अपनो के बीच में,  
फिर भी एक घुटन सी रहती है,  
ढूँढ़ती हूँ कोई कोना,  
दो चार आँसू बहाने को।

सोचती हूँ ढाल लूँ  
खुद को दुनियाँ के रंग में,  
फिर भी मैं क्यूं जिये जा रही हूँ  
अपने ही ढंग में।

बसंत हो या पतझड़,  
चाहे हो तूफानों का मंजर,  
जिंदगी को जियूंगी हँसकर,  
चाहे हो आँखो में कितने भी समंदर।

मैं जियूंगी हँसकर,  
मैं जियूंगी हँसकर।।

— नीता सिंह  
— आशीष कुमार

## गांधी की याद में

एक,  
चली थी  
आजादी की आंधी।  
जिसे लोग कहते थे  
महात्मा गांधी।  
अर्द्ध वस्त्र शरीर जिनका,  
था शांति का प्रतीक।  
हाथ में लम्बी लाठी,  
चौराहे पर है अडिग।  
मुस्काता चेहरा उनका,  
नोटों पर है सटीक।  
आज भी जिनके पास है,  
नोट गांधी की भरपूर।  
खिलखिलता है वह चेहरा,  
गांधी है जिनके पास की दस्तूर।  
जी तोड़ मेहनत करता,  
श्रमिक है लाचार।  
गांधी छपी नोट पाने का,  
करते वे व्यापार।  
प्रासांगिक कितना है गांधी,  
करें, गौर, विचार।  
होता जहां झगड़ा—लड़ाई,  
और जाति भेद—भाव।  
पहुंच जाते खुद गांधी,  
वहां अपने आप।  
चली अशांति की बयार जब,  
हर बार,  
गांधी रूपी शांति की हुई,  
बारिश घनघोर।

कह सकते नहीं,  
कि मेरा हैं गांधी।  
हर जगह गूंजता है उनका स्वर,  
जिसमें बसी है आजादी की पुकार।  
चली थी जब गांधी की आंधी,  
इस देश महान में।  
देख चर्चिल हो जाते चुप,  
गांधी की शांति वार में।

• • • • • • • •

— नारायण दास

### वह स्त्री हूँ मैं

“इस जगत् में जिसने तुमको लाया  
वह स्त्री हूँ मैं।  
  
नौ महीनों तक जिसने तुम्हें उठाया  
कमजोर समझ कर जिसे,  
तुमने घर से निकाला  
संकट आने पर फिर,  
हमें ही पुकारा  
वह स्त्री हूँ मैं।  
  
हो सके तो कर देना  
एक छोटा सा उपकार  
इस समाज में हर एक स्त्री को देना  
एक जैसा सम्मान  
यह छोटी सी इच्छा रखने वाली  
वह स्त्री हूँ मैं।”

### मजदूर

“देखो ये कुछ कहते हैं,  
तुम सुन लो जरा इनकी भी  
हर दर्द चुपचाप सहते हैं।  
इच्छाएँ ज्यादा बड़ी नहीं इनकी  
फिर भी एक रोटी को तरसते हैं  
तुम भी कर लो इनका शोषण  
क्योंकि ये तुम जैसों से ही डरते हैं।  
देखो ये कुछ कहते हैं।  
तुम सुन लो जरा इनकी भी  
हर दर्द चुप चाप सहते हैं।”

**स्वेता यादव**

एम.ए. हिन्दी, तृतीय सेमेस्टर  
रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय

## साक्षात्कार नई प्रतिभाओं को मंच प्रदान करता है बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल: यशपाल शर्मा



हिंदी सिनेमा तथा रंगमंच के बेहतरीन और लाजवाब एक्टर यशपाल शर्मा किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। लगान फिल्म में अपने जबरदस्त अभिनय का लोहा मनवाने वाले यशपाल शर्मा ने आगे भी फिल्म यहाँ, अनवर, गुनाह, दम, वेलकम टू सज्जनपुर, गैंग्स ऑफ वासेपुर 2, गंगाजल, राउडी राठौड़, सिंह इज किंग सरीखी फिल्मों में अपने अभिनय का बेहतर प्रदर्शन किया वहीं दादा लख्मीचंद जैसी कलासिकल संगीतमय फिल्म बना कर डायरेक्शन के क्षेत्र में भी बुलन्दी के सभी झांडे गाड़ दिए। दादा लख्मी फिल्म की सफलता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि फिल्म में अभी तक के सारे रिकॉर्ड तोड़ कर अनेक नेशनल व इंटरनेशनल अवार्ड अपने नाम कर लिए हैं। यशपाल शर्मा न केवल बेहतरीन एक्टर डायरेक्टर हैं बल्कि इसके साथ ही बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल मंच के आइकॉन फेस भी हैं जिसकी संथापक उनकी पत्नी प्रतिभा शर्मा हैं।

अभी तक बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल के दो सत्र हो चुके हैं तथा तथा तीसरा सत्र आगामी नवम्बर में होने जा रहा है। पिछले बरस की तरह इस बार भी फीचर फिल्म, डाक्यूमेंट्री (लांग, शॉर्ट), लॉन्ग शॉर्ट फिल्म, शॉर्ट फिल्म, मोबाइल फिल्म, एनिमेशंस फिल्म, एल जी बी टी क्यू फिल्म, वेब सीरीज, स्यूजिक वीडियो, फीचर फिल्म स्क्रिप्ट(स्क्रीनप्ले), शॉर्ट फिल्म स्क्रिप्ट (स्क्रीनप्ले) इसमें शामिल होंगी। बेहतरीन चयनित फिल्म को नवंबर में होने वाले तीन दिवसीय फिल्म फेस्टिवल में दिखाया जाएगा और पुरुस्कृत किया जाएगा।

लगातार दो सालों से इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल सफलता की बुलंदियों को छू रहा है। इसकी संस्थापक प्रतिभा शर्मा ने बताया कि पहले ही वर्ष में लगभग 200 फिल्मों को ज्यूरी द्वारा सम्मिलित किया गया। दूसरे वर्ष तक आते आते इस फेस्टिवल ने देश विदेश के सिनेमा प्रेमियों में अपनी एक पहचान बना ली। यही वजह है कि दूसरे बरस भी भारी तादाद के साथ फिल्मों के आवेदन आए। यशपाल शर्मा और प्रतिभा शर्मा द्वारा चलाए जा रहे बिपक कि सराहना देश विदेश में हो रही है। इन दोनों का ही मकसद सिनेमा जगत से जुड़ी नई उभरती प्रतिभाओं को प्रकाश में लाना है तथा सही मार्गदर्शन प्रदान करना है। यह अभी तक का शायद अकेला ऐसा मंच है जिसका उद्देश्य नए लोगों को अवसर प्रदान करना है। बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल आज अपनी ऊंचाइयों को छू रहा है। इसी मंच से जुड़े महत्वपूर्ण विषयों पर मशहूर आलोचक, फिल्म समीक्षक व कहानीकार डॉ. तबस्सुम जहां ने यशपाल शर्मा से लंबी बातचीत की। यहां प्रस्तुत है बातचीत का महत्वपूर्ण अंश।

डॉ तबस्सुम जहां— सर आज जो इतने नेशनल इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल हो रहे हैं ऐसे में आप बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल को कैसे उनसे अलग करके देखते हैं?

यशपाल शर्मा— मैंने लोकल और नेशनल—इंटरनेशनल बहुत सारे फिल्म फेस्टिवल अटैंड किए हैं और मैं इस बात को अच्छे से जानता हूँ कि इक्का दुक्का को छोड़कर बहुत लोग अपने दोस्तों को अवार्ड दे देते हैं या अपने दोस्तों को बुला लेते हैं। इसका मतलब है कि सही कंपटीशन या सही टैलेंट को अवार्ड नहीं मिल पाता है। जो वहाँ आ गया उनको ही अवार्ड दे दिया जाता है। ऐसे बड़े-बड़े फेस्टिवल में भी होते हैं जो ठीक नहीं है। मेरा मानना है कि फेस्टिवल में जो नहीं आ पा रहा है और यदि उसको अवार्ड दिया जाए या उसके नाम को अनाउंस किया जाए तो यह उस व्यक्ति की गरिमा है कि यकीनन उस व्यक्ति ने अच्छा काम किया होगा। हमारे फेस्टिवल की पारदर्शिता और इसकी ज्यूरी की निश्पक्षता का पता इस बात से चल जाता है कि इसमें एक बंगलादेश तथा एक पेरिस के टैलेंटेड व्यक्ति शामिल है। वे बहुत ही रेपुटेड डायरेक्टर और एक्टर हैं जिनको ज्यूरी में शामिल किया गया है। इसके अलावा इसमें तीन लोग नेशनल अवार्ड विनर हैं जो हमारे ज्यूरी टीम में शामिल हैं। इसमें ज्यूरी द्वारा जो डिसाइड किया जाता है ठीक वही रिजल्ट हम पेश करते हैं। हम उसमें किसी भी तरह का कोई बदलाव नहीं करते हैं। ज्यादा से ज्यादा जो फाउंडर चॉइस अवार्ड होता है बस एक ही अवार्ड हम अपनी तरफ से देते हैं। इस तरीके से बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल अन्य सभी फेस्टिवल से अलग हो जाता है। बेशक धीरे-धीरे ही सही पर यह उत्तरोत्तर अपनी पहचान बना रहा है और आने वाले दिनों में बड़े फेस्टिवल में यह शुमार होगा, मुझे ऐसी उम्मीद है। शुरू में थोड़ा उतार चढ़ाव होता है। लोग यकीन नहीं करते हैं कि इतने तो फेस्टिवल चल रहे हैं तो इस फेस्टिवल की क्या जरूरत है या फिर साथ में काम करने वाले थोड़ा भरोसा तोड़ देते हैं। लेकिन मैं उन सबको भरोसा दिलाता हूँ कि आने वाले दिनों में बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल 'बेस्ट ऑफ द वन' फेस्टिवल होगा यह मेरा आपसे वादा है और मेरी पत्नी प्रतिभा का भी क्योंकि यह प्रतिभा की ही देन है। मैं तो केवल साथ में खड़ा हूँ। मेरा मानना है कि इसमें रेपुटेड या सिलेक्टेड फिल्में जो अच्छी होंगी वही दिखाई जाएंगी। यहीं मेरा मकसद है।

**डॉ. तबस्सुम जहां— सर बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल का मुख्य उद्देश्य क्या है और इसे बनाने के पीछे क्या मकसद है?**

यशपाल शर्मा— आपके इस प्रश्न का उत्तर मैंने अभी दिया है लेकिन इसमें मैं एक चीज और जोड़ना चाहूंगा कि मकसद और उद्देश्य यह है कि जो लोग अच्छे टैलेंटेड हैं, अच्छे कलाकार हैं अच्छे डायरेक्टर व एक्टर हैं वो लोग कई बार इनसिक्योर असुरक्षित महसूस करते हैं कि पता नहीं इतनी बड़ी-बड़ी फिल्में आएंगी पता नहीं हमारा नम्बर पड़ेगा या नहीं पड़ेगा, पर मैं उनको भरोसा दिलाता हूँ कि अगर उनकी फिल्म में दम है या उनकी एकिटंग में दम है तो बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल उनको जरूर सिलेक्ट करेगा और उनको सम्मानित करेगा व उनको अवार्ड देगा। यह मेरा आपसे वादा है क्योंकि टेलेंट की जीत होनी चाहिए। नई प्रतिभाओं को मंच प्रदान करना और उन्हें आगे बढ़ने का मौका देना है ही बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल का मुख्य उद्देश्य है। कई बार मैंने भी ठोकरें खाई हैं इसलिए मैं इसको महसूस कर सकता हूँ कि जो बेस्ट एक्टर होता है उसको अवार्ड नहीं मिल पाता है और किसी अन्य को मिल जाता है या उनके किसी जान पहचान वाले को जो कि एक बहुत बड़ी दुविधा या ट्रेजिडी है। अतः इसका मकसद नई प्रतिभाओं को मौका देना भी है।

**डॉ. तबस्सुम जहां— अक्सर इस तरह के फेस्टिवल में आक्षेप लगते हैं कि उनकी फिल्मों के चयन में भेदभाव होता है ऐसे में बॉलीवुड इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल ने किस प्रकार अपनी छवि साफ सुथरी बनाई हुई है या इन सब मामलों में यह किस प्रकार बाकीयों से अलग है?**